* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

गंगाधर भगवान् शंकर
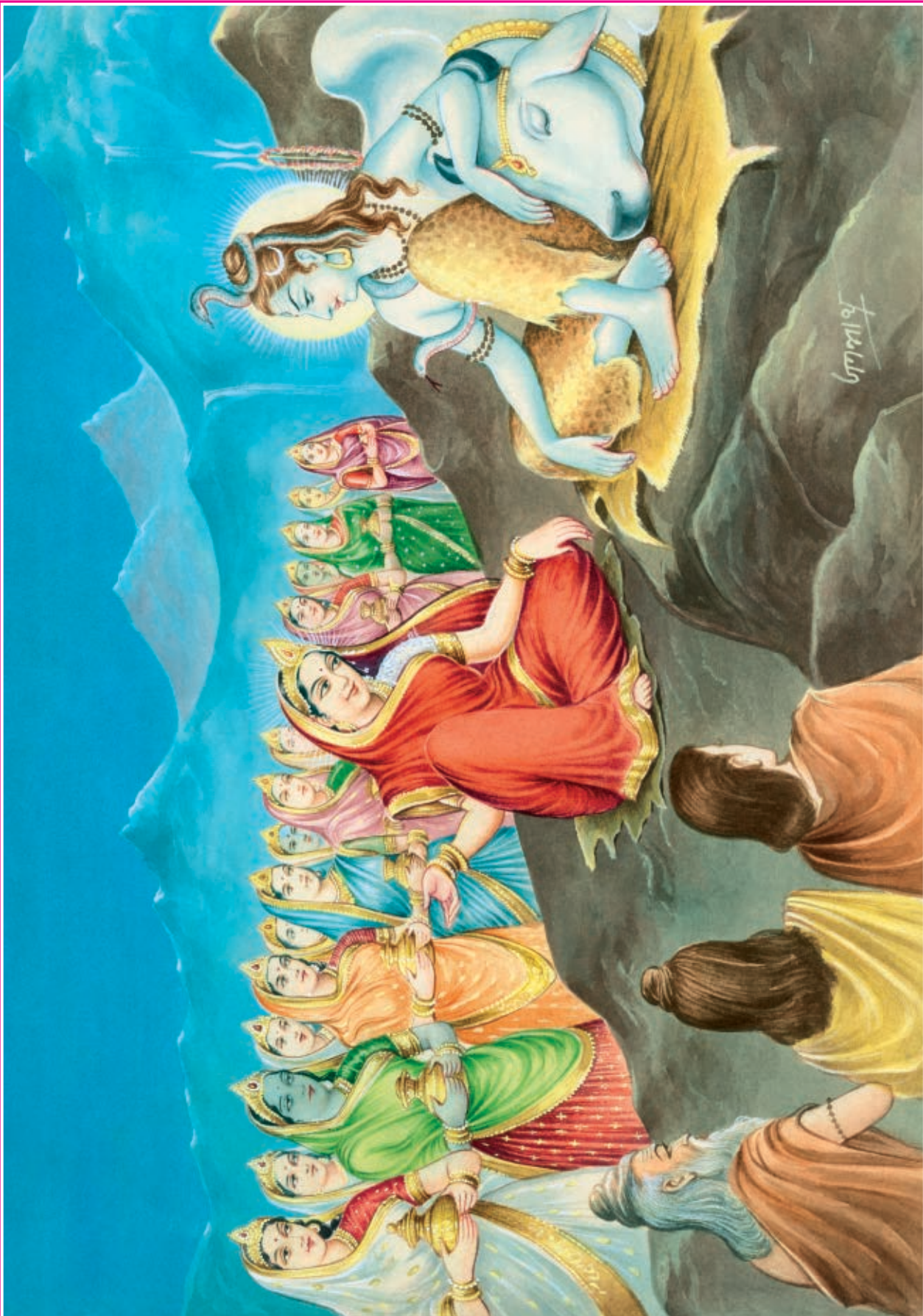
भगवान् शिवको शरीरधारिणी नदियोंका परिचय देती पार्वतीजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९० | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, फरवरी २०१६ ई० | संख्या २
पूर्ण संख्या १०७१

गंगा सर्वसरिद्वरा

इमास्तु नद्यो देवेश सर्वतीर्थोदकैर्युताः। उपस्पर्शनहेतोस्त्वामुपयान्ति समीपतः॥
एषा सरस्वती पुण्या नदीनामुत्तमा नदी। प्रथमा सर्वसरितां नदी सागरगामिनी॥
विपाशा च वितस्ता च चन्द्रभागा इरावती। शतद्रूर्देविका सिन्धुः कौशिकी गौतमी तथा॥
यमुनां नर्मदां चैव कावेरीमथ निम्नगाम्।
तथा देवनदी चेयं सर्वतीर्थाभिसम्भृता। गगनाद् गां गता देवी गङ्गा सर्वसरिद्वरा॥

[भगवती पार्वती भगवान् शंकरसे कहती हैं—] हे देवेश्वर! ये नदियाँ सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे सम्पन्न हो आपके स्नान और आचमन आदिके लिये अथवा आपके चरणोंका स्पर्श करनेके लिये यहाँ आपके निकट आ रही हैं। ××× ये नदियोंमें उत्तम पुण्यसलिला सरस्वती विराजमान हैं, जो समुद्रमें मिली हुई हैं। ये समस्त सरिताओंमें प्रथम (प्रधान) मानी जाती हैं। इनके सिवा विपाशा (व्यास), वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा (चिनाव), इरावती (रावी), शतद्रू (शतलज), देविका, सिन्धु, कौशिकी (कोसी), गौतमी (गोदावरी), यमुना, नर्मदा तथा कावेरी नदी भी यहाँ विद्यमान हैं। ये समस्त तीर्थोंसे सेवित तथा सम्पूर्ण सरिताओंमें श्रेष्ठ देवनदी गंगादेवी भी, जो आकाशसे पृथ्वीपर उतरी हैं, यहाँ विराजमान हैं। **[महाभारत-अनुशासनपर्व अ० १४६]**

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, फरवरी २०१६ ई०

विषय-सूची

विषय — **पृष्ठ-संख्या**

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क } **वार्षिक** US$ 45 (₹ 2700) **पंचवर्षीय** US$ 225 (₹ 13500) { **Us Cheque Collection Charges 6$ Extra**

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—वाणीका संयम करनेका एक ही उपाय है—भगवन्नाम-जप एवं स्वाध्यायको वाणीका विषय बना लेना। जीभके लिये भगवान्के नामका जप ही एकमात्र काम रह जाय, दूसरे किसी भी कामके लिये उसमेंसे समय निकालना न पड़े। जो व्यक्ति इस प्रकारका जीवन बना लेता है, वह जहाँ रहता है, वहीं उसके द्वारा जगत्को एक बहुत बड़ी चीज अपने-आप अनायास ही मिलती रहती है।

वाणीको भगवान्के नाममें लगा दे। कम-से-कम जितनी बात, जब जिस रूपमें बोलनी आवश्यक हो, उतनी ही, उस रूपमें बोले, बाकी समयमें अपनेको मौन-सा करके भगवान्के नामका जप करता रहे। जीभसे भगवान्का नाम लेता रहे और अपने कानोंद्वारा उसे सुनता रहे।

जीभ स्थूल अंग है; कर्मेन्द्रिय है, पर यदि यह भगवान्के नामके साथ लगी रहती है तो यह जीवनको उत्तम स्तरपर खींच ले जाती है। फिर तो जीवनके अन्तमें भगवान्का नाम मुखसे आया कि काम बना।

याद रखो—भगवान्के नाम-जपका अभ्यास होनेके बाद मनसे सोचते और हाथसे काम करते रहनेपर भी अभ्यासवश जीभसे नाम अपने-आप निकलता रहेगा। सारे शास्त्रोंके सत्संगका (स्वाध्यायका) फल भी तो यही है कि भगवान्के नाममें रुचि हो जाय।

श्रीभगवान्के एक भी गुणका रहस्य, एक भी नामकी महिमा, एक भी चरित्रका प्रभाव, एक भी शक्तिका तत्त्व जान लिया जाय अथवा एक भी रूपकी जरा-सी भी झाँकीका ज्ञान हो जाय तो फिर भगवान्से क्षणभरके लिये भी चित्त न हटे।

मनमें यह विश्वास होना चाहिये कि नाम भगवान् ही हैं। भगवान् जब मेरी जिह्वापर आ गये तो भगवान्के सारे दिव्य गुण मेरे भीतर आ गये। भगवान्के गुणोंको अपने अन्दर उतरता देखे—'करुणा, दया, प्रेम, अहिंसा, अस्तेय आदि गुण मुझमें आ रहे हैं। नाम मुँहमें आते ही अपनेको माने—'मैं पवित्र हूँ, मैं सर्वथा पवित्र हूँ।'

याद रखो—नाम-नामी एक हैं, अतएव भगवान्के नाम-जपके समय यह अनुभव करे कि 'भगवान् मेरे हृदयमें आ रहे हैं, भगवान्की झाँकी मेरे हृदयमें उतर रही है।' नामकी शरण हो जाय—दूसरे किसी साधनकी आकांक्षा एवं अपेक्षा न करे। भगवान्के नामपर अपनेको निर्भर कर दे। नाम सर्वशक्तिमान् है—यह विश्वास करके उसीपर निर्भर हो जाय अर्थात् अपनेको उसपर छोड़कर निश्चिन्त हो जाय। अपना भला कब, कैसे होगा, इसके विषयमें निश्चिन्त हो जाय। शरणागत कुछ माँगता नहीं, वह कुछ चाहता नहीं, वह भगवान्पर ही निर्भर रहता है—सब प्रकारसे। अपना भला किसमें है, इसका निश्चय भी वह नहीं करता। वह भगवान्से कहता है—'मेरा भला किसमें है तथा उसे कैसे प्राप्त करना है—यह आप जानें। नाथ! मेरी तो एक ही भावना है—आपकी शक्तिसे ही सब काम होगा और वही काम होगा, जो आप चाहेंगे।' आप वही चाहेंगे, जिसमें मेरी भलाई होगी।

श्रीभगवान्पर विश्वास रखकर उनका नाम-जप करना चाहिये और उनकी कृपापर भरोसा करके अपनेको सर्वतोभावसे उन्हींपर छोड़ देना चाहिये।

याद रखो—संतों-महात्माओंकी दृष्टिमें सबसे सरल साधन है—नामका अभ्यास। मुखसे निरन्तर भगवान्के नामका उच्चारण होता रहे और हाथोंसे काम। अभ्यास होनेपर ऐसा होना सर्वथा सम्भव है—बस, ***'मुख नामकी ओट लई है।'*** विश्वास होगा तो इस नामोच्चारणमात्रसे ही कल्याण हो जायगा।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

गंगाधर भगवान् शंकर

पूर्वकालकी बात है, महाराज सगर नामके चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने अपने गुरु और्वके उपदेशानुसार सर्वशक्तिमान् भगवान्की आराधनाके उद्देश्यसे अश्वमेधका घोड़ा छोड़ा, परंतु इन्द्रने उसे चुराकर पातालस्थित कपिलमुनिके आश्रममें ले जाकर बाँध दिया।

महाराज सगरकी दो रानियाँ थीं—सुमति और केशिनी। महारानी सुमतिसे उत्पन्न सगरके साठ हजार पुत्रोंने अश्वमेध-यज्ञके अश्वका अन्वेषण करते हुए सारी पृथ्वी खोद डाली। खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तरके कोनेपर कपिलमुनिके पास अपना यज्ञका घोड़ा दिखायी दिया। घोड़ेको देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोड़ेको चुरानेवाला चोर है। देखो तो सही, इसने इस समय कैसे आँखें मूँद रखी हैं।' उसी समय कपिलमुनिने अपनी आँखें खोलीं, जिससे वे उद्दण्ड सगरपुत्र क्षण-भरमें ही सब-के-सब जलकर खाक हो गये।

सगरकी दूसरी पत्नीका नाम था केशिनी। उसके गर्भसे उन्हें असमंजस नामका पुत्र प्राप्त हुआ था। असमंजसके पुत्रका नाम था अंशुमान्। वे अपने दादा सगरकी आज्ञाओंके पालन तथा उन्हींकी सेवामें लगे रहते थे। उनकी आज्ञासे अंशुमान् घोड़ेको ढूँढ़नेके लिये निकले। वे अपने चाचाओंके द्वारा खोदे हुए समुद्रके किनारे-किनारे चलकर भगवान् कपिलमुनिके आश्रममें पहुँचे और वहाँ बँधे अपने यज्ञीय अश्व और चाचाओंके शरीरकी भस्मको उन्होंने देखा। कपिल मुनिको देख अंशुमान्ने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और एकाग्र मनसे उनकी स्तुति करने लगे।

अंशुमान्की स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् कपिलने कहा—'बेटा! यह घोड़ा तुम्हारे पितामहका यज्ञपशु है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओंका उद्धार केवल गंगाजलसे होगा और कोई उपाय नहीं है।' अंशुमान्ने बड़ी नम्रतासे उन्हें प्रसन्न करके उनकी परिक्रमा की और वे घोड़ेको ले आये। सगरने उस यज्ञपशुके द्वारा यज्ञकी शेष क्रिया समाप्त की और अंशुमान्को राज्यभार सौंपकर स्वयं विषयोंसे निःस्पृह हो गये।

अंशुमान्ने गंगाजीको लानेकी कामनासे बहुत वर्षोंतक घोर तपस्या की, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली; समय आनेपर उनकी मृत्यु हो गयी। अंशुमान्के पुत्र दिलीपने भी वैसी ही तपस्या की, परंतु वे भी असफल ही रहे; समयपर उनकी भी मृत्यु हो गयी। दिलीपके पुत्र थे भगीरथ; उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर गंगाजीने उन्हें दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा। उनके ऐसा कहनेपर राजर्षि भगीरथने बड़ी विनम्रतासे अपना अभिप्राय प्रकट किया कि 'आप मर्त्यलोकमें चलिये।'

गंगाजीने कहा—'भगीरथ! जिस समय मैं स्वर्गसे भूतलपर गिरूँ, उस समय मेरे वेगको कोई धारण करनेवाला होना चाहिये। ऐसा न होनेपर मैं पृथ्वीको फोड़कर रसातलमें चली जाऊँगी।'

भगीरथने कहा—'माता! समस्त प्राणियोंके आत्मा रुद्रदेव आपके वेगको धारण कर लेंगे; क्योंकि जैसे साड़ी सूतोंमें ओत-प्रोत है, वैसे ही यह सारा विश्व भगवान् रुद्रमें ओत-प्रोत है।'

गंगाजीसे इस प्रकार कहकर राजा भगीरथने तपस्याके द्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न किया। भगवान् शंकर तो सम्पूर्ण विश्वके हितैषी हैं, राजाकी बात उन्होंने स्वीकार कर ली। फिर सावधान होकर भगवान् शंकरने गंगाजीको अपने सिरपर धारण किया, इससे उनका एक नाम 'गंगाधर' भी हो गया।

इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवनपावनी गंगाजीको वहाँ ले गये, जहाँ उनके पितरोंके शरीर राखके ढेर बने पड़े थे। उस राखकी ढेरसे गंगाजीके पावन जलका स्पर्श होते ही वे सब स्वर्ग चले गये। **[श्रीमद्भागवत]**

गंगा-गौरव

विष्णुपादोद्भवा देवी विश्वेश्वरशिरःस्थिता। संसेव्या मुनिभिर्देवैः किं पुनः पामरैर्जनैः॥
गङ्गाया महिमा ब्रह्मन् वक्तुं वर्षशतैरपि। न शक्यते विष्णुनापि किमन्यैर्बहुभाषितैः॥
अहो माया जगत्सर्वं मोहयत्येतदद्भुतम्। यतो वै नरकं यान्ति गङ्गानाम्नि स्थितेऽपि हि॥
सकृदप्युच्चरेद् यस्तु गङ्गेत्येवाक्षरद्वयम्। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥

[श्रीसनकजी देवर्षि नारदसे कहते हैं—] भगवान् विष्णुके चरणकमलोंसे प्रकट होकर भगवान् शिवके मस्तकपर विराजमान होनेवाली भगवती गंगा मुनियों और देवताओंके द्वारा भी भलीभाँति सेवा करनेयोग्य हैं, फिर साधारण मनुष्योंके लिये तो बात ही क्या है? ××× हे ब्रह्मन्! दूसरी बातें बहुत कहनेसे क्या लाभ, साक्षात् भगवान् विष्णु भी सैकड़ों वर्षोंमें गंगाजीकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। अहो! माया सारे जगत्को मोहमें डाले हुए है, यह कितनी अद्भुत बात है? क्योंकि गंगा और उसके नामके रहते हुए भी लोग नरकमें जाते हैं! ××× जो एक बार भी 'गंगा'—इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके लोकको जाता है। **[नारदपुराण]**

श्रीगंगाजीके स्मरणका फल

यत्संस्मृतिः सपदि कृन्तति दुष्कृतौघं
पापावलीं जयति योजनलक्षतोऽपि।
यन्नाम नाम जगदुच्चरितं पुनाति
दिष्ट्या हि सा पथि दृशोर्भविताद्य गङ्गा॥

जिनकी स्मृति पापराशिका तत्काल नाश कर देती है, जो लाख योजन दूरसे भी पापोंके समूहको परास्त करती है, जिनका नाम उच्चारण किये जानेपर सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर देता है, वे गंगाजी आज सौभाग्यवश मेरे दृष्टिपथमें आयेंगी। **[पद्मपुराण]**

मुमुक्षुर्यत्र कुत्रापि यदि गङ्गामनुस्मरेत्।
तदा तन्मुक्तये गङ्गा सन्निधौ वसते स्वयम्॥
स्वर्गापवर्गदा पुंसां प्रत्यक्षा प्रकृतिः स्वयम्।
यस्तां नैव स्मरेत्तस्य विफलं जीवनं स्मृतम्॥

यदि मोक्षकी इच्छा करनेवाला मनुष्य जहाँ कहीं भी गंगाका स्मरण कर ले तो गंगा उसकी मुक्तिके लिये स्वयं उसकी सन्निधिमें निवास करती हैं। साक्षात् परा प्रकृति गंगा स्वयं प्रकट होकर मनुष्योंको स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। जो उनका स्मरण नहीं करता है, उसका जीवन व्यर्थ कहा गया है। **[महाभागवत]**

गंगाके उद्देश्यसे यात्रा करनेका फल

मुमूर्षुर्जाह्नवीयात्रां कुरुते यस्तु मानवः।
तं दृष्ट्वा दूरतो यान्ति यमदूता भयार्दिताः॥
गङ्गामुद्दिश्य गच्छन्तं पथि भाग्यादुपस्थितम्।
आतिथ्यं कुरुते यस्तु तस्य पुण्यार्धकं स्मृतम्॥
प्रणमेच्चापि तं यस्तु विनयेनाभिभाषते।
सोऽपि पापात्प्रमुच्येत सत्यं सत्यं न संशयः॥
यस्तु मोहात्तिरस्कुर्यात्स पापात्मा तु नारद।
पच्यते नरके घोरे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥

जो आसन्न-मृत्यु मनुष्य गंगा-यात्रा करता है, उसे देखकर यमदूत भयाक्रान्त हो दूर चले जाते हैं। गंगाको उद्देश्य करके जानेवाले मनुष्यको भाग्यवश मार्गमें पाकर जो मनुष्य उसका आतिथ्य करता है, उसे [गंगाप्राप्तिका] आधा पुण्य मिल जाता है—ऐसा कहा गया है। साथ ही जो मनुष्य उसे (गंगार्थीको) प्रणाम करता है और उससे विनम्र भावसे बातचीत करता है, वह भी पापमुक्त हो जाता है, यह सत्य है, सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जो पापात्मा मनुष्य अज्ञानवश उसका अनादर करता है, वह चौदह इन्द्रोंके स्थितिकालतक (कल्पपर्यन्त) घोर नरकमें दुःख भोगता है। **[महाभागवत]**

श्रीगंगाजीके दर्शनका फल

भवन्ति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्।
गङ्गाया दर्शनात् तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

जैसे गरुड़को देखते ही सारे सर्प विषहीन हो जाते हैं, वैसे ही गंगाजीके दर्शनमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। **[महाभारत]**

जात्यन्धैरिह तुल्यास्ते मृतैः पङ्गुभिरेव च।
समर्था ये न पश्यन्ति गङ्गां पुण्यजलां शिवाम्॥

जो सामर्थ्य होते हुए भी पवित्र जलवाली कल्याणमयी गंगाका दर्शन नहीं करते, वे जन्मान्धों, पंगुओं और मुर्दोंके समान हैं। [महाभारत]

श्रीगंगाजीके स्पर्शका फल

सेयं सुरधुनी पुण्या महापातकनाशिनी।
स्पर्शनाद्दर्शनाच्चापि निर्वाणफलदायिनी॥

[श्रीमहादेवजी कहते हैं—हे नारद!] ये पुण्यमयी गंगा अपना दर्शन करने तथा अपने जलका स्पर्श करने-मात्रसे प्राणियोंके महापातकका नाश कर देती हैं तथा उन्हें मोक्षफल प्रदान करती हैं। [महाभागवत]

श्रीगंगाजीके तटपर निवासका फल

यो वत्स्यति द्रक्ष्यति वापि मर्त्य-
स्तस्मै प्रयच्छन्ति सुखानि देवाः।
तद्भाविताः स्पर्शनदर्शनेन
इष्टां गतिं तस्य सुरा दिशन्ति॥

जो मनुष्य गंगाजीके तटपर निवास और उनका दर्शन करता है, उसे सब देवता सुख देते हैं। जो गंगाजीके स्पर्श और दर्शनसे पवित्र हो गये हैं, उन्हें गंगाजीसे ही महत्त्वको प्राप्त हुए देवता मनोवांछित गति प्रदान करते हैं। [महाभारत]

श्रीगंगाजीके सेवनका फल

पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि ये नराः।
पश्चाद् गङ्गां निषेवन्ते तेऽपि यान्त्युत्तमां गतिम्॥

जो मनुष्य जीवनकी पहली अवस्थामें पापकर्म करके भी बादमें गंगाजीका सेवन करने लगते हैं, वे भी उत्तम गतिको ही प्राप्त होते हैं। [महाभारत]

भूतभव्यभविष्यज्ञैर्महर्षिभिरुपस्थिताम्।
देवैः सेन्द्रैश्च को गङ्गां नोपसेवेत मानवः॥

भूत, वर्तमान और भविष्यके ज्ञाता महर्षि तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी उपासना करते हैं, उन गंगाजीका सेवन कौन मनुष्य नहीं करेगा? [महाभारत]

श्रीगंगाजीके शरण-ग्रहणका फल

विनयाचारहीनाश्च अशिवाश्च नराधमाः।
ते भवन्ति शिवा विप्र ये वै गङ्गामुपाश्रिताः॥

विनय और सदाचारसे हीन अमंगलकारी नीच मनुष्य भी गंगाजीकी शरणमें जानेपर कल्याणस्वरूप हो जाते हैं। [महाभारत]

गंगाजलकी महिमा

मेरोः सुवर्णस्य च सर्वरत्नैः संख्योपलानामुदकस्य वापि।
गङ्गाजलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तुं गुणाख्यापरिमाणमत्र॥

मेरुके सुवर्णकी, सब प्रकारके रत्नोंकी, वहाँके प्रस्तर और जलके एक-एक कणकी गणना हो सकती है, परंतु गंगाजलके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें नहीं है। [नारदपुराण]

गंगाजलके पानका फल

गण्डूषमात्रपाने तु अश्वमेधफलं लभेत्।
स्वच्छन्दं यः पिबेदम्भस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥

केवल एक कुल्लीभर गंगाजलके पान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो स्वच्छन्द गंगाजलका पान करता है, मुक्ति उसके हाथोंमें स्थित रहती है। [बृहन्नारदीयपुराण]

गंगास्नानका फल

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शते स्थितः।
सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान्॥

[श्रीसनकजी देवर्षि नारदजीसे कहते हैं—] जो गंगासे सौ योजन दूर खड़ा होकर भी 'गंगा-गंगा' का उच्चारण करता है, वह भी सब पापोंसे मुक्त हो जाता है; फिर जो गंगामें स्नान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है? [नारदपुराण]

अपहत्य तमस्तीव्रं यथा भात्युदये रविः।
तथापहत्य पाप्मानं भाति गङ्गाजलोक्षितः॥

जैसे सूर्य उदयकालमें घने अन्धकारको विदीर्ण करके प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार गंगाजलमें स्नान करनेवाला पुरुष अपने पापोंको नष्ट करके सुशोभित होता है। [महाभारत]

स्वायम्भुवं यथा स्थानं सर्वेषां श्रेष्ठमुच्यते।
स्नातानां सरितां श्रेष्ठा गङ्गा तद्वदिहोच्यते॥

जैसे ब्रह्मलोक सब लोकोंमें श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसे ही स्नान करनेवाले पुरुषोंके लिये गंगाजी ही सब नदियोंमें श्रेष्ठ कही गयी हैं। [महाभारत]

ज्ञानकी दुर्लभता और उसकी प्राप्तिका उपाय

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

किसी श्रद्धालु पुरुषके सामने भी वास्तविक दृष्टिसे महापुरुषोंके द्वारा यह कहना नहीं बन पड़ता कि 'हमको ज्ञान प्राप्त है'; क्योंकि इन शब्दोंसे ज्ञानमें दोष आता है। वास्तवमें पूर्ण श्रद्धालुके लिये तो महापुरुषसे ऐसा प्रश्न ही नहीं बनता कि 'आप ज्ञानी हैं या नहीं ?' जहाँ ऐसा प्रश्न किया जाता है, वहाँ श्रद्धामें त्रुटि ही समझनी चाहिये और महापुरुषसे इस प्रकारका प्रश्न करनेमें प्रश्नकर्ताकी कुछ हानि ही होती है। यदि महापुरुष यों कह दे कि 'मैं ज्ञानी नहीं हूँ' तो भी श्रद्धा घट जाती है और यदि वह यह कह दे कि 'मैं ज्ञानी हूँ' तो भी उसके मुँहसे ऐसे शब्द सुनकर श्रद्धा कम हो जाती है। वास्तवमें तो 'मैं अज्ञानी हूँ या ज्ञानी'—इन दोनोंमेंसे कोई-सी बात कहना भी महापुरुषके लिये नहीं बन पड़ता, यदि वह अपनेको अज्ञानी कहे तो मिथ्यापनका दोष आता है और यदि ज्ञानी कहे तो नानात्वका। इसलिये वह यह भी नहीं कहता कि 'मैं ब्रह्मको जानता हूँ' और यह भी नहीं कहता कि 'मैं नहीं जानता।' वह ब्रह्मको जानता है—ऐसा भी उससे कहना नहीं बनता, परंतु वह नहीं जानता हो—ऐसी बात भी नहीं है। श्रुति कहती है—

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्॥

(केन० २। २-३)

इसीलिये इसका नाम अनिर्वचनीय स्थिति है, इसीलिये वेदमें दोनों प्रकारके शब्द आते हैं और इसीलिये महापुरुष यह नहीं कहते कि 'मुझे प्राप्ति हो गयी।' इस सम्बन्धमें वे स्वयं अपनी ओरसे कुछ भी न कहकर वेद और शास्त्रोंकी तरफ संकेत कर देते हैं, परंतु ऐसा भी नहीं कहते कि 'मुझे प्राप्ति नहीं हुई।' ऐसा कहना तो उत्तम आचरण करनेवाले आचार्य या नेता पुरुषोंके लिये भी योग्य नहीं; क्योंकि इससे उनके अनुयायियोंका ब्रह्मकी प्राप्तिको अत्यन्त कठिन मानकर निराश होना सम्भव है। जैसे यदि आज कोई परम सम्माननीय पुरुष कह दे कि मुझे प्राप्ति नहीं हुई है, मैं तो स्वयं प्राप्तिके लिये उत्सुक हूँ तो ऐसा कहनेसे उनके अनुयायीगण या तो यह समझ बैठते हैं कि जब इनको ही प्राप्ति न हुई तो हमको क्योंकर होगी या यों समझ लेते हैं कि इतने अंशमें सम्माननीय पुरुषके शब्द या तो अयथार्थ हैं या असली स्थितिको छिपानेवाले हैं और इस प्रकारके दोषारोपणसे उन लोगोंकी श्रद्धामें कुछ कमी होना सम्भव है। अतएव इस विषयमें मौन ही रहना चाहिये। इन सब बातोंपर विचार करनेसे यही सिद्ध होता है कि महापुरुषके लिये ज्ञानी अथवा अज्ञानी किसी भी शब्दका प्रयोग उसके अपने मुखसे नहीं बनता। इतना होनेपर भी महापुरुष यदि अज्ञानी साधकको समझानेके लिये उसे ज्ञानोपदेश करते समय उसीकी भावनाके अनुसार अपनेमें ज्ञानीकी कल्पना करके अपनेको ज्ञानी शब्दसे सम्बोधित कर दे तो भी कोई हानि नहीं, वास्तवमें उसका यों कहना भी उस साधककी दृष्टिमें ही है और ऐसा कहना भी उसी साधकके सामने सम्भव है, जो पूर्ण श्रद्धालु और परम विश्वासी हो, जो महापुरुषके शब्दोंको सुनते-सुनते ही स्वयं वैसा बनता जाय और जिस स्थितिका वर्णन महापुरुष करते हों, उसी स्थितिमें स्थित हो जाय। इसपर ऐसा कहा जा सकता है कि श्रद्धा और विश्वास तो पूर्ण है, परंतु वैसी स्थिति नहीं होती। इसके लिये वह बिचारा श्रद्धालु साधक क्या करे ? यह ठीक है, परंतु साधकके लिये इतना तो परमावश्यक है कि वह श्रवणके अनुसार ही एक ब्रह्ममें विश्वासी होकर उसीकी प्राप्तिके लिये पूरी तरहसे तत्पर हो जाय, जबतक उसे प्राप्ति न हो तबतक वह उसके लिये परम व्याकुल रहे। जैसे किसी मनुष्यको एक जानकारके द्वारा उसके घरमें गड़ा हुआ धन मालूम हो जानेपर वह उसे खोदकर निकालनेके लिये व्याकुल होता है, यदि उस समय उसके पास बाहरके आदमी बैठे हुए हों तो वह सच्चे मनसे यही चाहता है कि कब ये लोग हटें, कब मैं अकेला रहूँ और कब उस गड़े हुए धनको निकालकर हस्तगत कर सकूँ। इसी प्रकार जो साधक यह समझता है कि मेरे साधनमें बाधा देनेवाले आसक्ति और अज्ञान आदि दोष कब दूर हों

और कब मैं अपने परम-धन परमात्माको प्राप्त करूँ। जितनी ही देर होती है, उतनी ही उनकी व्याकुलता और उत्कण्ठा उत्तरोत्तर प्रबल होती चली जाती है और वह उस विलम्बको सहन नहीं कर सकता। यदि इस प्रकारके साधकके सामने महापुरुष स्पष्ट शब्दोंमें भी अपनेको ज्ञानी स्वीकार कर ले तो भी कोई हानि नहीं, परंतु इससे नीची श्रेणीके साधक और अपूर्ण प्रेमियोंके सामने यों कहनेसे उस महापुरुषकी तो कोई हानि नहीं होती, परंतु अनधिकारी होनेके कारण उस सुननेवालेके पारमार्थिक विषयमें हानि होना सम्भव है। यदि यह बात सभीको स्पष्ट कहनेकी होती तो शास्त्रोंमें इसे परम गोपनीय न कहा जाता और केवल अधिकारीको ही कहनी चाहिये, ऐसी विधि न होती।

कोई यह कहे कि महापुरुषकी परीक्षा कैसे की जाय और यदि बिना परीक्षाके ही किसी अयोग्य व्यक्तिको गुरु अथवा उपदेशक मान लिया जाय तो शास्त्रोंमें उससे उलटी हानि होना कहा गया है। यह प्रश्न और शास्त्रोंका कथन तो उचित ही है, परंतु जिसका संग करनेसे परमात्मामें, उस महापुरुषमें और शास्त्रोंमें श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, उसे गुरु या उपदेशक माननेमें कोई हानि नहीं। यदि कोई पूर्ण न भी हो तो जहाँतक उसका गम्य है, वहाँतक तो वह पहुँचा ही सकता है, [इस दृष्टिसे महापुरुषकी संगति करनेवाले साधकोंका संग भी उत्तम और लाभदायक है] आगे परमात्मा स्वयं उसे निभा लेते हैं। साधकको आवश्यकता है उस परमात्माके परायण होनेकी। श्रीपरमात्माकी शरण लेनेमात्रसे ही सब कुछ हो सकता है। भगवान्‌ने कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

अर्थात् जो अनन्य-भावसे मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम-भावसे भजते हैं, उन नित्य एकीभावसे मुझमें स्थित पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। संसारमें भी यही बात देखनेमें आती है कि यदि कोई किसीके परायण हो जाता है तो उसकी सारी सँभाल वही रखता है, जैसे बच्चा जबतक अपनी माताके परायण रहता है, तबतक उसकी रक्षाका और सब प्रकारकी सँभालका भार माता स्वयं ही अपने ऊपर लिये रहती है। जबतक बालक बड़ा होकर स्वतन्त्र नहीं होता, तबतक माता-पिताके प्रति उसकी परायणता रहती है और जबतक परायणता रहती है, तबतक माता-पितापर ही उसका सारा भार है। इसी प्रकार केवल एक परमात्माकी शरण लेनेसे ही सारे काम सिद्ध हो सकते हैं। परंतु शरण लेनेका काम साधकका है। शरण होनेके बाद तो प्रभु स्वयं उसका सारा भार सँभाल लेते हैं। अतएव कल्याणके प्रत्येक साधकको परमात्माकी शरण लेनी चाहिये।

सरस्वती-वन्दना

(डॉ० श्रीगार्गीशरणजी मिश्र 'मराल')

माँ शारदे शत शत नमन, माँ शारदे शत शत नमन।
चरण कमलों में समर्पित भ्रमर सा यह विकल मन॥

एक कर में वेद चारों,
एक में माला सुघर।
ज्ञान पाओ साधना से,
ईश पाओ भक्ति कर॥
है यही सन्देश तेरा जान ले धरती गगन।
दो करों में ललित कला
प्रतीक वीणा सज रही।
स्वरों की ज्यों मधुर लहरी
राग बनकर बज रही॥
कला बिन जीवन अधूरा खिलाये जो मन-सुमन॥

श्वेत वाहन हंस तेरा,
श्वेत आसन सित कमल।
श्वेत साड़ी से ढका तन,
श्वेत ही है मुख कमल॥
दे रहे उपदेश उज्ज्वल हो मनुज का आचरण।
कला का वरदान दे माँ,
ज्ञान दे माँ, भक्ति दे माँ।
आचरण हो शुभ्र ऐसी
साधना की शक्ति दे माँ॥
कर सकूँ सेवा जगत की हरूँ जन के अश्रुकण॥

भगवान् कपिलका प्रादुर्भाव

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

श्रीदेवहूति स्वायम्भुव मनुकी पुत्री, प्रियव्रत एवं उत्तानपादकी बहन थी। जब वह विवाहयोग्य हुई तब मनु कन्या प्रदान करनेके लिये महर्षि कर्दमके आश्रममें गये। महर्षि कर्दमने अपनी महती तपस्यासे भगवान्का प्रत्यक्ष कर लिया था और भगवान्ने उनके यहाँ पुत्र-रूपसे प्रकट होना भी स्वीकार किया था। मनुकी प्रार्थनापर जब महर्षिने विवाह करना स्वीकार कर लिया, तब मनु एवं शतरूपाने दहेजके साथ भूषण, वसन, अलंकारादिसे युक्त विधिविधान-पूर्वक महर्षिको कन्यादान कर दिया और स्वयं मुनिके आज्ञानुसार विदा होकर अपने पुरको चले गये। पिता-माताके चले जानेपर देवहूति पतिके अभिप्रायको समझकर बड़े प्रेमसे उनकी परिचर्या करने लगी। अपनी पवित्रता, जितेन्द्रियता, शुश्रूषा, सौहार्दपूर्वक मिष्ट भाषण, काम-दम्भ-द्वेष-लोभ-पाप-अहंकार आदि दुर्गुणोंसे सदा पराङ्मुखता आदि गुणोंसे देवहूतिने परमतेजस्वी महर्षिको प्रसन्न कर लिया। विवाहके पश्चात् महर्षि भजन, ध्यान, समाधिमें लग गये थे। बहुत कालकी सेवा तथा व्रतचर्यासे कर्शिता, दुर्बला पत्नीको देखकर एक दिन कृपापूर्वक गद्गद कण्ठसे महर्षिने कहा—'हे मानवि! तुम्हारी शुश्रूषा और भक्तिसे मैं प्रसन्न हूँ, तुमने मेरी सेवामें तत्पर होकर अतिप्रिय देहकी भी परवाह नहीं की। तप, समाधि एवं विद्यामें चित्तकी एकाग्रता तथा भगवत्प्रसादसे जो भी दिव्य भोग मुझे प्राप्त हैं, वे सब मेरी सेवासे तुम्हारे लिये भी प्राप्त हों। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ। मेरी सेवासे प्राप्त अभय एवं अशोक लोकोंको देखो। अब तुम सिद्ध हो गयी हो, राजाओंके लिये भी अप्राप्य निज धर्मसे प्राप्त भोगोंको भी भोगो।

यह सुनकर और अखिल योगविद्याओंमें विचक्षण महर्षिको देखकर देवहूति चिन्तासे मुक्त हो गयी और नम्रता तथा प्रेमसे बोली—'आपका अमोघ योगमाया-वैभव जान रही हूँ, जिस तरह मैं आपकी समुचित सेवा कर सकूँ, वैसी मुझे आज्ञा करें।' प्रेयसीके अभिप्रायको जानकर कर्दमजीने योगबलसे उसी समय एक कामगामी दिव्य, अतिसुन्दर, सर्वभोग-सामग्रीसम्पन्न विमान बनाया। उसके भीतर विहार, विश्राम, शयन आदिके पृथक्-पृथक् यथायोग्य सब स्थान थे। ऐसे अद्भुत स्थानको देखकर भी देवहूतिको चुपचाप बैठी देख सर्वज्ञकल्प ऋषिने कहा—'इस सरोवरमें स्नान करके इस विमानपर आओ।' पतिका वचन मानकर जैसे ही वह मलिन वस्त्र और जटिल केशोंको धारण किये पंकिल देहसे उस सरोवरमें प्रविष्ट हुई, वैसे ही सरोवरके भीतर दिव्य भवनमें उसे कमलकी-सी गन्धवाली सहस्रों किशोरी कन्याएँ दिखायी पड़ीं। उन्होंने देवहूतिको महार्ह जलसे नहलाकर, निर्मल, नूतन, दिव्य वस्त्र पहनाये, प्रकाशमय बहुमूल्य भूषण पहनाये और सर्वगुणसम्पन्न, अमृतमय अन्नपानादि प्रदान किये। देवहूतिने दिव्य भूषण, वसन-अलंकारादिसे भूषित, सुसज्जित, अलंकृत होकर अपना मुख दर्पणमें देखा और जैसे ही अपने पतिका स्मरण किया, वैसे ही वह उन स्त्रियोंके साथ ही ऋषिके सन्निधानमें पहुँच गयी। पतिके सामने सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त अपने आपको देखकर उसे उनकी योगगतिपर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। अष्ट लोकपालोंके विहार-स्थान, कुलाचलेन्द्रके शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन एवं गंगाप्रवाहके शब्दसे युक्त द्रोणियोंमें तथा वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र, मानस, चैत्ररथ आदि वनोंमें कामगामी विमानसे दूसरे वैमानिकोंको अतिलंघन करके उन्होंने बहुत कालपर्यन्त विहरण किया। श्रीहरिके प्रार्थना-प्रभावसे महायोगी कर्दमके लिये कुछ दुष्कर और दुष्प्राप्य नहीं था। वे पत्नीको आश्चर्यपूर्ण सम्पूर्ण भूगोल दिखाकर अपने आश्रमको लौट आये और सैकड़ों वर्षोंतक दिव्यभोगोंमें रमण करते रहे। इसके उपरान्त देवहूतिके गर्भसे एक ही दिनमें बहुत-सी कमललोचना कन्याएँ उत्पन्न हुईं।

एक दिन अकस्मात् ऋषिको प्रव्रज्या करने (संन्यास लेने) जाते देख देवहूतिने अत्यन्त खिन्न होकर आँसुओंको रोककर कहा—'भगवन्! यद्यपि आपने मुझपर बड़ी कृपा की है तथापि इन दुहिताओंके लिये अभी योग्य वर ढूँढ़ना है, साथ ही आपके प्रव्रजित होनेपर मुझे निःशोक करनेके

लिये आपसे कोई पुत्र भी होना आवश्यक है, अतः मुझ प्रपन्नाको अभयदान दीजिये। प्रभो! इन्द्रियोंके विलाससे परमात्म-विस्मृतिमें बहुत काल बीत गया। यद्यपि विषयोंमें आसक्त होकर आपके माहात्म्यको न जानकर ही मैंने आपका संग किया तथापि आपके संगसे मुझे अवश्य अभय मिलना चाहिये। असत् पुरुषोंका संग संसारका हेतु होता है, वही संग सत्पुरुषोंके साथ किया हुआ निःसंगताका हेतु बन जाता है। जिसके कर्म, धर्म एवं वैराग्य भगवत्सेवामें पर्यवसित न हों, वह जीता हुआ भी मृत है। प्रभो! मैं भगवान्‌की मायासे वंचित होकर विमुक्तिदाता आपको पाकर भी बन्धनसे न छूट सकी।' इस तरहके वचनको सुनकर और भगवान्‌के वचनोंका स्मरणकर दयालु मुनिने कहा—'राजपुत्रि! तुम खिन्न मत हो। भगवान् अक्षर परमात्मा शीघ्र ही तुम्हारे गर्भमें आयेंगे। तुमने इन्द्रिय-संयम, नियम, तप, दान आदिसे व्रत धारण किया है, अब श्रद्धासे ईश्वरका भजन करो, प्रभु तुम्हारी आराधनासे मेरे यशका विस्तार करते हुए तुम्हारे पुत्ररूपसे प्रकट होकर हृदयग्रन्थिका भेदन करेंगे।'

बड़े गौरवसे पतिके वचन सुनकर देवहूति श्रद्धासे कूटस्थ परम पुरुषका अनुसन्धान करने लगी। बहुत दिनोंके बाद कर्दमके तेजसे भगवान् देवहूतिके गर्भमें आये। उस समय देवता आकाशमें विविध वादित्र बजाने लगे, गन्धर्व गुण-गान करने लगे एवं अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, सभी दिशाएँ, सरोवर एवं सरिताएँ तथा सज्जनोंके मन प्रसन्न हो उठे। उस समय मरीच्यादि ऋषियोंको संग लेकर ब्रह्माजी कर्दममुनिके आश्रममें आये और प्रसन्न होकर कर्दमसे कहा—'तात! सृष्टिमें प्रवृत्त होकर तुमने हमारी आज्ञाका निश्छल भावसे जो पालन किया, इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अब इन कन्याओंको मुख्य-मुख्य ऋषियोंको प्रदान करो। इनसे सृष्टिका पूर्ण विस्तार होगा। भगवान् परमात्मा कपिलरूपसे तुम्हारे गृहमें अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे ज्ञान, विज्ञान, योगसे कर्मग्रन्थियोंका उद्धरण करेंगे। हे मानवि! भगवान् तेरे गर्भमें आ गये हैं, वे अविद्या-ग्रन्थिका छेदन करके सिद्धगणोंके ईश्वर, सांख्याचार्योंसे सुसम्मत कपिल नामसे प्रसिद्ध होकर पृथ्वीपर विचरण करते हुए तुम्हारी कीर्ति बढ़ायेंगे।' इस तरह दोनोंको आश्वासन देकर कुमारों एवं नारदके साथ हंसारूढ़ होकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये।

कर्दमने मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, अथर्वा नामक ऋषियोंको क्रमशः कला, श्रद्धा, हविर्भू, गति, क्रिया, अनसूया, ख्याति, अरुन्धती, शान्ति नामकी अपनी कन्याओंको प्रदान किया। ऋषि लोग अपनी-अपनी पत्नियोंको लेकर अपने-अपने आश्रमोंमें गये। इसके उपरान्त देवहूतिके गर्भसे प्रकट भगवान् कपिलके सन्निधान—एकान्तमें जाकर कर्दमजी कहने लगे—'प्रभो! यतिलोग शून्यागारोंमें बहुजन्मपक्व योगसमाधिसे जिस पदको देखनेका प्रयत्न करते हैं, वही आप हम ग्रामीणोंके गृहमें प्रकट हुए हैं। प्रभो! आप भक्तोंका मान बढ़ाते हैं। यद्यपि आप अरूप हैं, फिर भी आपके भक्त जैसा-जैसा चाहते हैं, वैसे-वैसे ही रूपमें प्रकट होते हैं—

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव।
यानि यानि च रोचन्ते स्वजना नामरूपिणः॥

(श्रीमद्भा० ३। २४। ३१)

सर्वाराध्य सर्वैश्वर्यपूर्ण प्रभो! हम आपकी शरणमें हैं। अब मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ कि परिव्राट् (संन्यासी) होकर, आपमें चित्त लगाकर, विशोक हो जाऊँ।'

भगवान्‌ने कहा—'मुने! मैं पूर्वकथनानुसार आपके यहाँ अवतीर्ण हुआ हूँ। मुमुक्षुओंके लिये बहुत कालसे लुप्त तत्त्व-प्रसंख्यानका वर्णन करूँगा। आप जाओ, कर्म-संन्यास करके, दुर्जय मृत्युको जीतकर, अमृतत्व प्राप्त करनेके लिये मेरा भजन करो। मुझ सर्वभूत-गुहाशायी, स्वयंज्योति आत्माको स्वस्वरूपसे आत्मामें ही प्रत्यक्ष करके अभय हो जाओ। माताके लिये मैं सर्वकर्मशमनी आध्यात्मविद्या दूँगा, जिससे वह भी निर्भय पद प्राप्त कर सकेगी।' इस तरह कपिलसे अनुज्ञात होकर, उनकी प्रदक्षिणा करके प्रजापति कर्दम वनमें चले गये। निःसहाय एवं निःसंग होकर अनग्नि और अनिकेत हो पृथ्वीपर विचरने लगे। एकान्त भक्तिसे सदसत्से परे परब्रह्ममें मन जोड़कर निरहंकार, निर्भय, निर्द्वन्द्व, समदृक्, स्वदृक्, प्रत्यक्, प्रशान्तधी हो गये। प्रत्यगभिन्न भगवान्‌में विश्व और विश्वमें प्रत्यगभिन्न भगवान्‌को देखते हुए भागवती गतिको प्राप्त हो गये।

संसारमें मेरा कौन ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'संसारमें मेरा कौन है' यह प्रश्न है, तो भाई! इसका असली उत्तर यह है कि मेरा भगवान्‌के सिवाय कोई नहीं, ये दोनों चीजें—मेरा कोई नहीं और मैं किसीका नहीं—माननेकी हैं। एक बड़ी सुन्दर बात यह है कि जबतक जिसको 'मेरा' कहनेवाले अधिक होते हैं, तबतक इस बातमें एक बड़ी बाधा रहती है कि भगवान् उसे 'मेरा' कह दें और जबतक बहुत-सी वस्तुओंमें 'मेरापन' रहता है, तबतक भगवान्‌को 'मेरा' कह दे, इसमें भी बाधा रहती है। दोनों चीजें विचारनेकी हैं। भई! हमारे इतने स्नेही हैं, क्या करें, वे सभी हमें तो अपना मानते हैं, सभी 'मेरा' मानते हैं, ये अभिमान बोलता है, मोह बोलता है। वह जबतक ऐसा मानता है कि संसारमें मुझको मेरे कहनेवाले बहुत हैं, तबतक भगवान् उसको 'मेरा' कहनेमें सकुचाते हैं। है तो वह भगवान्‌का 'मेरा' ही, पर वह कह देगा भगवान्‌से कि महाराज! आप मुझको मेरा मानते हो, सो तो माना, पर इतने आदमी मुझको मेरा मानते हैं, क्या उनको छोड़ दूँ आपके लिये? वह चाहे इस भाषामें न कहे, पर जीवनके आचरणसे तो वह कहता रहता है। इसीलिये जिसको बहुत लोग मेरा मानते हैं, उसको भगवान् 'मेरा' कहनेमें सकुचाते हैं, यद्यपि वह है भगवान्‌का ही; क्योंकि वह भगवान्‌का एकाधिपत्य अपने ऊपर स्वीकार नहीं करता, वह कहता है कि मैं बहुतोंका मेरा हूँ तो केवल भगवान्‌का मेरा—ये क्यों?

हाँ, एकने कहा मुझसे, बड़ी अच्छी बात कही। कोई बहन थी, उसने कहा और मुझे अच्छी बात लगी। उसकी स्थिति क्या है, मुझे पता नहीं, मैं जानता नहीं। उसने कहा कि जब मुझपर विपत्ति आयी, तब मेरे मनमें यह आया कि मुझे अब 'मेरी' कौन कहेगा? मेरी कौन कहेगा? उसके बाद ही ऐसी चीज घटी कि भगवान्‌ने 'मेरा' कह दिया, बड़ा अच्छा, बड़ा अच्छा। अगर ये सत्य है तो इतनी अच्छी बात है कि यहाँके 'मेरे' कहनेवाले अगर कोई भी न रहे और न ही रहने चाहिये। नहीं रहनेका अर्थ ये नहीं कि वे सब मर जायँ, ये अर्थ नहीं—'अपने प्रति उनका मेरा भाव छुट जाय।' तो क्या होगा, भगवान् उसे मेरा कह देंगे और जहाँ भगवान्‌ने मेरा कहा, काम बन गया। तुलसीदासजीने तो बड़े सहज भावसे कहा कि महाराज! लगता क्या है? एक बार कह दो—एक बार कहो ना तुलसीदास! तू मेरो, एक बार कहो ना तुलसीदास मेरो, एक बार कह दो ना। राम दो बार बोलते नहीं, एक बार कह दिया सो कह दिया; तो बोले—रामजी! एक बार कह दो ना तुलसीदास मेरा—क्या बिगड़ता है आपका?

पर वे मेरा कहनेमें सकुचाते हैं, जबतक मेरा कहनेवाले बहुत लोगोंका दल रहता है, बहुत लोग कहते हैं—ये मेरा, ये मेरा, तबतक भगवान् कहते हैं—भई! इनके बने रहो अब, हमारे अकेलेके तो तुम बनना चाहते नहीं, तुमको हम कैसे मेरा कहें? भगवान् मेरा किसको कहना चाहते हैं, ये बड़ी समझनेकी बात है कि हम जहाँ भगवान्‌का एकाधिपत्य अपने ऊपर स्वीकार कर लेते हैं, एकाधिपत्य—हम भगवान्‌के ही मेरे और किसीके मेरे नहीं—ये चीज जब हमारे जीवनमें आ जाती है, तो भगवान् कह देंगे कि 'तुम मेरे'।

और दूसरी चीज—हम बहुत चीजोंको मेरी-मेरी कहते हैं, ये मकान मेरा, ये धन मेरा, ये पुत्र मेरा, ये जमीन मेरी, ये कीर्ति मेरी, नाम मेरा, यश मेरा, न मालूम कितनी-कितनी लाखों-करोड़ों वस्तुओंमें हमारा मेरापन फैला हुआ है। जबतक लाखों वस्तुओंमें मेरापन फैला है, तबतक हम निश्चिन्त रूपसे भगवान्‌से खुलकर कैसे कह दें कि तुम ही मेरे हो? भगवान् कहेंगे भई! बात तो तुम्हारी ठीक है कि तुम हमारे हो, पर तुम तो बहुतोंको मेरा मान रहे हो ना! तुम्हारी ममता तो न मालूम कितनी जगह बिखरी पड़ी है? तो उन्हींमें तुम हमको भी मेरा मानना चाहते हो, जैसे वे तुम्हारे, वैसे एक मैं भी बन जाऊँ! बोले भई! मोटर है, गाड़ी है, इंजन है, मशीन है, चूल्हा है, चक्की है—ऐसे भगवान् भी हमारे बन जायँ। जैसे घरमें चूल्हा-चक्की रहे, ऐसे भगवान् भी रहें

तो अच्छा है, एक भगवान् भी रह जायँ, एक चीजपर मेरा मेरापन और बढ़े। इस प्रकारके 'मेरापन' को भगवान् स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं—भई! सीधी बात है—अगर तुम चाहते हो, मुझको अपना बनाना; तो सारी ममता जो है, ये केवल मेरेमें केन्द्रित हो। इस प्रकार दोनों बातें—मुझे अपना अधिकार पूरा कर लेने दो या मेरे-पर तुम पूरा अधिकार कर लो। अधूरा नहीं या तो तुम केवल मेरे बन जाओ, तुमपर मेरा पूर्णाधिकार हो जाय, तुमको मेरा कहनेवाला मेरे सिवाय कोई रहे नहीं। मेरी चीज बन जाओ, दूसरोंकी चीज नहीं, दूसरेकी चीज तुम अगर बनने जाओगे, मेरे बननेके साथ-साथ, तो भैया! मैं नाराज हो जाऊँगा। नाराज होनेका अर्थ यही कि तुमको मेरा कहनेमें संकोच करूँगा और या तो तुम मेरेपर पूरा अधिकार कर लो, मुझको ही मेरा मान लो और किसी वस्तुमें मेरापन मत रखो, तुम्हारा काम हो जायगा। तो क्या करे? भगवान्से हम प्रार्थना करें कि जिससे हमारे ऊपरसे सबका मेरापन उठ जाय और हमारा सबसे मेरापन उठ जाय। हमारे ऊपर भगवान्का एकान्त—अनन्य मेरापन हो जाय और हमारा भगवान्में एकान्त—अनन्य मेरापन हो जाय, तब भगवान् ये कह सकेंगे तुम मेरे और हम यह कह सकेंगे भगवान्! तुम्ही मेरे।

ये दोनों बातें भगवान्को स्वीकार्य हैं, जगत्में जहाँ मेरापन कहते हैं, जगत्में जहाँ हम अपनेको किसीका मेरा बनाते हैं—ये दोनों ही हमारे लिये खतरनाक चीज है—भ्रांति है। भगवान्के नाते सबको मेरा कहे, इसमें आपत्ति नहीं, जैसे मैनेजर अपनी फर्मकी सारी चीजोंको मेरा कहता है—'मेरा' शब्द कहनेमें कोई आपत्ति नहीं, शब्दोंसे डरना और शब्दोंको बदल लेना, सूत्र नहीं बदलता। इससे हम बोले कि ये शरीर इस पार जायेगा और हम कहें कि हम उस पार जायँगे, इसमें कोई भी गड़बड़ी नहीं है, चाहे शरीर कहें और चाहे 'मैं' कहें, पर शरीरमें 'मैं' बना है और शरीर हम अलग कहते हैं तो कोई बात नहीं और इस 'मैं' में अगर 'मैं' नहीं है और मैं कहते हैं तो कोई आपत्ति नहीं, ये बात नहीं भाषासे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। असलमें भावसे होता है। संसारकी वस्तुएँ रहें, कोई आपत्ति नहीं, उनका हम उपयोग भी करें, उनकी सँभाल भी करें, पर करें वैसे ही जैसे मैनेजर अपने मालिककी वस्तुकी करता है, उसे मेरा-मेरा भी कहता है, आज हम अपनी दुकान गये थे, आज हमने अपना ये काम किया। ये हमारी चीज है, नौकरोंसे कहेगा कि देखो, वह चीज हमारी है, जरा ठीकसे रखना। हमारी माने अपनी और अपनी माने मालिककी। मालिककी चीज मानकर मैनेजरके हिसाबसे गुमाश्तेकी भाँति, सेवकके नाते हम उसका भली-भाँति आचरण करें, कोई आपत्तिकी बात नहीं, परंतु यदि हम उसको मेरा मान लेते हैं तो महाराज! एक तो होती है ये बेईमानी, दूसरा कोई हमें चीज दे सँभाल—सेवाके लिये और हम उसके मालिक बन बैठे!

भगवती गंगा मंगलका विस्तार करें

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन् महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।
श्रुतीनां सर्वस्वं सुकृतमथ मूर्तं सुमनसां सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिवं नः शमयतु॥ १॥
दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदां द्रुतं दूरीकुर्वन् सकृदुपगतो दृष्टिसरणिः।
अपि द्रागाविद्याद्रुमदलनदीक्षागुरुरिह प्रवाहस्ते वारां श्रियमयमपारां दिशतु नः॥ २॥

[पंडितराज जगन्नाथ कहते हैं—] माँ! जो सम्पूर्ण पृथ्वीका महान् सौभाग्यरूप है, जो अनायास ही सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले शिवका भी परम ऐश्वर्यरूप है, जो श्रुतियोंका सर्वस्व है तथा देवताओंका मूर्तिमान् पुण्यरूप है, वह अमृतके सौन्दर्यका साररूप तुम्हारा जल हमारे अमंगलोंको दूर करे॥ १॥ गंगे! एक बार भी दृष्टिगोचर होनेपर जो दरिद्रोंके दारिद्र्य तथा पापियोंके पापको अतिशीघ्र नष्ट कर देता है और इस लोकमें अज्ञानरूप वृक्षका सब ओरसे शीघ्र नाश करनेके लिये दीक्षागुरुके समान है, वह तुम्हारा जलप्रवाह हमें अपार ऐश्वर्य प्रदान करे॥ २॥ **[गंगालहरी]**

निश्चिन्त हो रहो

(संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल)

प्रभो! मेरे लिये 'मैं' जितना प्यारा हूँ, उससे कहीं अधिक तुम्हारे लिये 'मैं' प्यारा हूँ। फिर मैं अपने लिये इतनी चिन्ता क्यों करता हूँ? क्या तुमपर विश्वास नहीं है? क्या हृदयने तुमको भलीभाँति नहीं पहचाना? सचमुच मैं तुमपर निर्भर तो नहीं हूँ! पतिव्रता स्त्रीका सब कुछ चला जाय, एक पति बच रहे, तो वह सारे अभावको हँसती हुई सह लेती है; क्योंकि उसके लिये पतिसे बढ़कर प्यारी-से-प्यारी चीज दूसरी कोई नहीं। जो व्यभिचारिणी स्त्री सबके पास अपने हृदयकी जाँच कराती फिरती है, पर किसीको प्राण नहीं दे सकती, वह कहींपर वैसा आश्रय भी नहीं पाती। उसका मन किसी भी जगह निश्चिन्त होकर नहीं ठहर सकता। इसी तरह हमारा मन भी अभी एकनिष्ठ नहीं हो सका है। वह अभीतक यह निश्चय नहीं कर सका है कि अपनेको कहाँ दिया जाय? हृदयके ग्राहक तो बहुत हैं। यश, अर्थ, विद्या, स्त्री, पुत्र, संसार आदि सभी हृदय खरीदना चाहते हैं, परंतु चाहते हैं प्राय: बिना ही मूल्य! क्योंकि हृदयका उचित मूल्य इनमेंसे किसीके पास भी नहीं है। पूरे दाम देकर हृदय खरीदनेका सामर्थ्य किसीमें भी नहीं दीख पड़ता। दु:ख तो इसी बातका है कि जो हृदयकी यथार्थ कीमत जानता है और पूरी कीमत दे सकता है, उसको हृदय पहचानकर अपना नहीं बना सका! प्यार न करनेपर भी जो प्यार करता है, याद न करनेपर भी जो याद आता है, उस चिरकालके सखाको—जीवन-मरणके सहचर जीवनबन्धुको—रे अभागे मन! तू किस सम्पत्तिके लोभसे, किसकी मायासे मुग्ध होकर भूल रहा है? धन चाहता है? रूप चाहता है? प्रतिष्ठा चाहता है? बतला तो सही, उसके समान धनी और कौन है? किसका इतना ऐश्वर्य है? सभी लोकोंमें तो उसका ऐश्वर्य छा रहा है। बता, इतना रूप और किसका है, जो स्वर्गसे लेकर मृत्युलोकतक समाता नहीं। आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र सभीमें उसके रूपका बाजार लग रहा है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग और स्त्री-पुरुषोंके मुखों और नेत्रोंमें उसके कैसे अपूर्वरूपका विकास हो रहा है। न मालूम कबसे कितने लोग इस रूपको देखते चले आ रहे हैं। कितने प्रकारसे कितने लोगोंने इसे समझनेकी चेष्टा की, परंतु किसीने इस रूपकी थाह नहीं पायी। किसीको यह रूप कभी पुराना नहीं लगा। कितने दिन बीत गये ध्रुवने देखा, प्रह्लादने देखा, अम्बरीषने देखा, नारद आदि ऋषियोंने देखा, फिर व्रजकी गोपियोंने देखा, ग्वाल बालकोंने देखा। अर्जुन, उद्धव, युधिष्ठिर, विदुर, भीष्मने देखा, पर देखा वही एक रूप, वही असीम शोभा, वही नयनोंको हरने और हृदय शीतल करनेवाली सुन्दरता! उसमें कभी कोई कमी नहीं हुई। जिसने देखा, वही पागल हो गया। उसके स्नेह-ममताके सभी बन्धन खुल गये। अर्थ, रूप, यौवन, यश आदि सबका मोह छूट गया!

उस प्राणारामको प्राण अर्पण कर देनेपर जैसा निश्चिन्त हुआ जाता है, वैसा और किसीको अर्पण करनेपर नहीं होता; क्योंकि अन्य किसीमें इतना सामर्थ्य ही नहीं है। उसके समान तुम्हारे दु:खसे दुखी होनेवाला और कोई नहीं है। छोटे बच्चेकी चिन्ता जितनी माताको रहती है, उतनी दूसरे किसीको नहीं रहती; क्योंकि माताके समान उसका आत्मीय दूसरा कोई नहीं है। इसी प्रकार उस हृदयसखा परमात्माके समान भी तुम्हारा परम आत्मीय दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसीलिये वह तुमसे जितना प्यार करता है, उतने प्यारकी आशा दूसरे किसीसे भी नहीं की जा सकती। सोचो, उसका तुमपर इतना अधिक प्रेम है, तुम उसे स्वीकार नहीं करते, तो भी वह कभी नाराज नहीं होता या कभी रूठता नहीं! तुम्हारे व्यवहारको देखकर वह केवल सजल नयनोंसे तुम्हारी ओर ताकता रहता है! संसारमें कितने लोग कितना पाप करते हैं, कितना विरुद्धाचरण करते हैं, इसके लिये क्या वह उनको आश्रय नहीं देता? क्या उनके लिये वह सूर्यका प्रकाश, वायु या जलका प्रवाह बन्द कर देता है? कभी नहीं! वह जानता है कि तुम्हारा यह भाव सामयिक है,

सदाके लिये नहीं! उसके साथ जो तुम्हारा निगूढ़ सम्बन्ध है, उसे तुम एक दिन अवश्य समझोगे। वह किसी भी बातके लिये घबराता नहीं। तब तुम्हें भी क्यों घबराना चाहिये? दु:ख, दारिद्र्य, रोग, शोक, ताप सभी आयें, खूब आयें! किसी तरह भी डरो मत! यह सारी सौगात उसीके घरसे तो आती है। बड़े सम्मानसे सिर झुकाकर उसकी दातको ग्रहण करो। ऐसा दिन फिर कब मिलेगा? उसके दिये हुए भारको उठानेका ऐसा अच्छा मौका और कब होगा? इस तरह उसे जोरसे पकड़ने, जानने और समझनेका सुअवसर दूसरा नहीं हो सकता, अतएव उसका दिया हुआ भार सिर चढ़ानेमें कभी पीछे मत हटो, दु:ख न करो। तुम्हारा ऐसा बन्धु दूसरा कौन होगा? जिसके नाम लेनेसे, जिसकी बात सुननेसे, घरके सारे काम नहाना, धोना, खाना सब भूल जाते हैं, उसको हृदयमें पाकर क्या कभी दु:खको दु:ख समझा जा सकता है? वह तुमपर इतना प्रेम करता है, इस बातको जान लेनेके बाद दु:खकी बात याद करनेमें भी तुम्हें लज्जा मालूम होगी। इसीसे कहा जाता है कि लाभ या हानि, अर्थ या अनर्थ, हेय या उपादेय, जन्म या मृत्यु, विच्छेद या मिलन—जो कुछ भी प्राप्त हो, सब कुछ उसका दिया हुआ समझकर निश्चिन्त हो रहो! मैं उसका सेवक हूँ—यह सोचकर उसके सम्पूर्ण आदेश पालन करनेके लिये तैयार रहो! अरे! ऐसा मित्र और कोई नहीं है! इतना प्रेमपूर्ण और कोई नहीं है! प्राण भी इतने अपने नहीं हैं। यह समझकर निर्भय चित्तसे निश्चिन्त होकर उसके विश्वमें विचरण करो!

मकर-संक्रान्तिपर्वपर गंगासागरयात्रा

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी त्रिपाठी)

एक ख्यातिप्राप्त लोकोक्ति है कि ***'सब तीरथ बार-बार, गंगासागर एक बार'***। इसे दो सन्दर्भोंमें देखा जा सकता है—प्रथम तो यह कि दूसरे तीर्थोंमें अनेक बार जाने, दर्शन करनेका जो पुण्य होता है—उतना पुण्य गंगासागरके एक बारके दर्शनसे हो जाता है। दूसरे सन्दर्भके अनुसार प्राचीन कालमें गंगासागरकी यात्राको अत्यन्त दुरूह माना जाता था; क्योंकि वहाँकी भौगोलिक स्थिति अत्यन्त दुर्गम थी और नौकाएँ वहाँ प्राय: डूब जाया करती थीं, परंतु अब ऐसी स्थिति नहीं है। गंगासागरतीर्थ पहुँचनेके लिये तीर्थयात्रियोंको हावड़ा रेलवे स्टेशन पहुँचना होता है। हावड़ा रेलवे स्टेशनसे ही लगा हुआ कोलकाता ट्रांसपोर्ट कारपोरेशनका बस स्टैण्ड है। बसें तीर्थयात्रियोंको हावड़ा रेलवे स्टेशनसे हराउड प्वाइंट, कागद्वीप नामखाना, बूड़ी गंगा (नामघाट) इत्यादि स्थानोंको ले जाती हैं, यात्री वहाँसे फिर आठ-दस कि०मी० लांचके द्वारा हुगली (गंगा) नदीको पारकर कुचबेडिया बस-स्टैण्डसे बसद्वारा गंगासागर बस-स्टैण्ड पहुँच जाते हैं। गंगासागर बस-स्टैण्डसे गंगासागर तीर्थ लगभग डेढ़ किमी० है। बस-स्टैण्डसे कपिलमुनिमन्दिर एक किमी० है, अत: वहाँसे उसे देखा जा सकता है।

डीघा (उड़ीसा-कोलकाता पश्चिम बंगालकी सीमा)-चित्तागोंग (बँगलादेश)-तक विस्तृत गंगाजीका पाट गंगाका मुहाना कहा जाता है। इसी मुहानेके बीचोंबीच उत्तरसे दक्षिणकी ओर लगभग ३५ किमी० और पूर्वसे पश्चिमकी ओर लगभग १५ किमी० क्षेत्रफलका एक टापू है जो कि माँ गंगाकी एक १०-१२ किमी० चौड़ी धाराके रूपमें प्रवाहित हुगली नदी सागर-संगमके पूर्वी तटपर स्थित है। इसे ही गंगासागर कहते हैं। यहाँ यात्री समुद्रदेवताको नारियल और जनेऊ भेंट करते हैं। पूजन एवं पिण्डदानके लिये बहुतसे पण्डागण गाय-बछियाके साथ खड़े रहते हैं, जो कि इच्छित पूजा करा देते हैं। समुद्रमें पितरोंको जल अवश्य अर्पित करना चाहिये। स्नान करनेके बाद कपिलमुनि-मन्दिरके दर्शन करना चाहिये। असली कपिलमुनि-मन्दिर लुप्त हो गया है, वर्तमानमें जो कपिलमुनि-मन्दिर है, वह समुद्रमें नहीं डूबता। इस प्रकार गंगासागरयात्रा अब बहुत आनन्ददायक एवं पुण्यमयी है। मकरसंक्रान्तिके पर्वपर देश-विदेशसे लाखों दर्शनार्थी यहाँ आते हैं।

साधकोंके प्रति—

[विश्वास और जिज्ञासा]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मनुष्य अपनी ओर नहीं देखता कि मेरा जन्म क्यों हुआ है, मुझे क्या करना चाहिये और मैं क्या कर रहा हूँ? जबतक वह उसपर ध्यान नहीं देता, तबतक उस मनुष्यका पद आप क्षमा करेंगे, पशुसे भी नीचा है! पशु, पक्षी, वृक्ष आदिसे भी उसका जीवन नीचा है! मनुष्य होकर भी सावधानी नहीं है तो क्या मनुष्य हुआ? मनुष्यमें तो यह सावधानी, यह विचार होना ही चाहिये कि हमारा जन्म क्यों हुआ है और हमें क्या करना चाहिये तथा क्या नहीं करना चाहिये। स्वयं इसका समाधान न हो तो न सही, पर संतोंकी वाणीसे, शास्त्रोंसे इसका पूरा समाधान हो जायगा कि यह मनुष्य-जन्म केवल अपना उद्धार करनेके लिये ही मिला है। भगवान्ने अपनी ओरसे यह अन्तिम जन्म दे दिया है, जिससे यह मुझे प्राप्त कर ले।

ब्रह्माजीने यज्ञोंके सहित प्रजाकी उत्पत्ति की—'**सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।**' (गीता ३।१०) अर्थात् कर्तव्य और कर्ता—ये दोनों एक साथ पैदा हुए। जो कर्तव्य है, वह सहज है। आज जो हमें कर्तव्य-कर्म करनेमें परिश्रम प्रतीत होता है, उसका कारण यह है कि हम संसारसे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं, नहीं तो यह स्वयं भी सहज है और इसका जो कर्तव्य है, वह भी सहज है, स्वाभाविक है! अस्वाभाविकताको यह स्वयं बना लेता है। इसे यह विचार नहीं होता कि अस्वाभाविकता कहाँ बना ली? कैसे बना ली? यदि विचार करे तो यह निहाल हो जाय!

अब एक बात बताते हैं। दो मार्ग हैं—एक विश्वासका मार्ग और एक जिज्ञासाका मार्ग। विश्वास वहाँ होता है, जहाँ सन्देह नहीं होता, सन्देह पैदा ही नहीं होता। जो सन्देहयुक्त विश्वास होता है, वह विश्वास-रूपसे प्रकट नहीं होता; परंतु जिज्ञासा वहाँ होती है, जहाँ सन्देह होता है। भक्तिमार्गमें विश्वास, निःसंदिग्धता मुख्य है और ज्ञानमार्गमें जिज्ञासा, सन्देह मुख्य है। विश्वास और जिज्ञासा—इन दोनोंको मिलानेसे साधकका जीवन शुद्ध नहीं रहता, अशुद्ध हो जाता है।

विश्वास किसमें होता है? जिसमें हम इन्द्रियोंसे, अन्तःकरणसे कुछ नहीं जानते, उसमें विश्वास होता है अथवा नहीं होता। जैसे, 'भगवान् हैं'—यह विश्वास होता है अथवा नहीं होता—ये दो ही बातें होती हैं। भगवान् हैं कि नहीं—यह बात वास्तवमें विश्वासीकी नहीं है, जिज्ञासुकी है। हैं कि नहीं—यह सन्देह जीवात्मापर होता है अथवा संसारपर होता है। कारण कि 'मैं हूँ' इसमें तो सन्देह नहीं है, पर 'मैं क्या हूँ' इसमें सन्देह होता है। अतः सन्देहसहित जो सत्ता है, उसमें जिज्ञासा पैदा होती है। स्वयंका और संसारका ज्ञान जिज्ञासासे होता है। परमात्माको मानना अथवा न मानना—इसमें आप बिलकुल स्वतन्त्र हैं। कारण कि परमात्माके विषयमें हम कुछ नहीं जानते और जिस विषयमें कुछ नहीं जानते, उसमें केवल विश्वास चलता है। जिसमें विश्वास होता है, उसमें सन्देह नहीं रहता—इतनी विचित्र बात है यह! जैसे स्त्री, पुत्र आदिको अपना मान लेनेसे फिर उसमें यह सन्देह नहीं रहता कि यह स्त्री मेरी है कि नहीं? यह बेटा मेरा है कि नहीं? यह लौकिक मान्यता टिकती नहीं; क्योंकि यह मान्यता जिसकी है, वह नाशवान् है, परंतु परमात्मा अविनाशी है; अतः उसकी मान्यता टिक जाती है; दृढ़ हो जाती है तो उसकी प्राप्ति हो जाती है। हमने सन्तोंसे यह बात सुनी है कि जो भगवान्को मान लेता है, उसे अपना स्वरूप जना देनेकी जिम्मेवारी भगवान्पर आ जाती है! कितनी विलक्षण बात है! भगवान् कैसे हैं, कैसे नहीं—इसका ज्ञान उसे स्वयं नहीं करना पड़ता। वह तो केवल

मान लेता है कि 'भगवान् हैं'। वे कैसे हैं, कैसे नहीं—यह सन्देह उसे होता ही नहीं।

पहले केवल भगवान्‌की सत्ता स्वीकार हो जाय कि 'भगवान् हैं, फिर भगवान्‌में विश्वास हो जाता है। संसारका विश्वास टिकता नहीं; क्योंकि हमें इस बातका ज्ञान है कि वस्तु, व्यक्ति आदि पहले नहीं थे, पीछे नहीं रहेंगे और अब भी निरन्तर नाशकी ओर जा रहे हैं; परंतु भगवान्‌के विषयमें ऐसा नहीं होता; क्योंकि शास्त्रोंसे, संतोंसे, आस्तिकोंसे हम सुनते हैं कि भगवान् पहले भी थे, पीछे भी रहेंगे और अब भी हैं। भगवान्‌पर विश्वास बैठनेपर फिर उनमें अपनत्व हो जाता है कि 'भगवान् हमारे हैं'। जीवात्मा भगवान्‌का अंश है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५।७); अतः भगवान् हमारे हुए। इसलिये आस्तिक भाववालोंको यह दृढ़तासे मान लेना चाहिये कि भगवान् हैं और हमारे हैं। ऐसी दृढ़ मान्यता होनेपर फिर भगवान्‌से मिले बिना रहा नहीं जा सकता। जैसे, बालक दुःख पाता है तो उसके मनमें माँसे मिलनेकी इच्छा होती है कि माँ मुझे गोदीमें क्यों नहीं लेती? उसके मनमें यह बात पैदा ही नहीं होती कि मैं योग्य हूँ कि अयोग्य हूँ, पात्र हूँ कि अपात्र हूँ।

जैसे भगवान्‌पर विश्वास होता है, ऐसे ही भगवान्‌के सम्बन्धपर भी विश्वास होता है कि भगवान् हमारे हैं। भगवान् कैसे हैं? मैं कैसा हूँ—यह बात वहाँ नहीं होती। भगवान् मेरे हैं; अतः मुझे अवश्य मिलेंगे—ऐसा दृढ़ विश्वास कर ले। यह 'मेरा'-पन बड़े-बड़े साधनोंसे ऊँचा है। त्याग, तपस्या, व्रत, उपवास, तितिक्षा आदि जितने भी साधन हैं, उन सबसे ऊँचा साधन है—भगवान्‌में अपनापन। अपनेपनमें कोई विकल्प नहीं होता। करनेवाले तो करनेके अनुसार फलको प्राप्त करेंगे, पर भगवान्‌को अपना माननेवाले मुफ्तमें पूर्ण भगवान्‌को प्राप्त करेंगे। करनेवाले जितना-जितना करेंगे, उनको उतना-उतना ही फल मिलेगा, परंतु भगवान्‌में अपनापन होनेसे भगवान्‌पर पूर्ण अधिकार मिलेगा। जैसे, बालक माँपर अपना पूरा अधिकार मानता है कि माँ मेरी है, मैं माँसे चाहे जो काम करा लूँगा, उससे चाहे जो वस्तु ले लूँगा। बालकके पास बल क्या है? रो देना—यही बल है। निर्बल-से-निर्बल आदमीके पास रोना ही बल है। रोनेमें क्या जोर लगाना पड़े? बच्चा रोने लग जाय तो माँको उसका कहना मानना पड़ता है। इसी तरह रोने लग जाय कि भगवान् मेरे हैं तो फिर दर्शन क्यों नहीं देते? मुझसे मिलते क्यों नहीं? भीतरमें ऐसी जलन पैदा हो जाय, ऐसी उत्कण्ठा हो जाय कि भगवान् मिलते क्यों नहीं! इस जलनमें, उत्कण्ठामें इतनी शक्ति है कि अनन्त जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं; कोई भी दोष नहीं रहता, निर्दोषता हो जाती है। जो भगवान्‌के लिये व्याकुल हो जाता है, उसकी निर्दोषता स्वतः हो जाती है। व्याकुलताकी अग्निमें पाप-ताप जितना शीघ्र नष्ट होते हैं, उतना शीघ्र जिज्ञासामें नहीं होते। जिज्ञासा बढ़ते-बढ़ते जब जिज्ञासुरूपसे हो जाती है अर्थात् जिज्ञासु नहीं रहता, केवल जिज्ञासा रह जाती है, तब उसकी सर्वथा निर्दोषता हो जाती है और वह तत्त्वको प्राप्त हो जाता है।

जबतक 'मैं जिज्ञासु हूँ'—यह मैं-पन रहता है, तबतक जिज्ञास्य तत्त्व प्रकट नहीं होता। जब यह मैं-पन नहीं रहता, तब जिज्ञास्य तत्त्व प्रकट हो जाता है। चाहे जिज्ञासा हो, चाहे विश्वास हो—दोनोंमेंसे कोई एक भी दृढ़ हो जायगा तो तत्त्व प्रकट हो जायगा। कर्तव्यका पालन स्वतः हो जायगा; जिज्ञासुसे भी कर्तव्यका पालन होगा और विश्वासीसे भी कर्तव्यका पालन होगा। दोनों ही अपने कर्तव्य-कर्मका तत्परतासे पालन करेंगे।

विश्वासी मनुष्य कर्तव्यकी दृष्टिसे कर्तव्यका पालन नहीं करता; परंतु भगवान्‌के वियोगमें रोता है। रोनेमें ही उसका कर्तव्य पूरा हो जाता है। उसमें केवल भगवत्प्राप्तिकी उत्कण्ठा रहती है। केवल भगवान्-ही-भगवान् याद रहते हैं। भगवान्‌के सिवा और कोई वस्तु

सुहाती नहीं—*‘अब कुछ भी नहीं सुहावे, एक तू ही मन भावे।’* दिनमें भूख नहीं लगती, रातमें नींद नहीं आती, बार-बार व्याकुलता होती है—*‘दिन नहिं भूख रैन नहिं निद्रा, छिन छिन व्याकुल होत हिया।’* व्याकुलतामें बहुत विलक्षण शक्ति है। यह जो भजन-स्मरण करना है, त्याग-तपस्या करना है, तीर्थ-उपवास आदि करना है, ये सभी अच्छे हैं, परंतु ये धीरे-धीरे पापोंका नाश करते हैं और व्याकुलता होनेपर आग लग जाती है, जिसमें सब पाप-ताप भस्म हो जाते हैं।

प्रश्न—ऐसी व्याकुलता कैसे पैदा हो?

उत्तर—संसारके संयोगका सुख न लें। जैसे प्राण चलता रहता है तो चलनेमें परिश्रम होनेसे भूख-प्यास स्वत: पैदा होते हैं; परंतु दिनभर तरह-तरहके पदार्थ खाते रहेंगे तो असली भूख नहीं लगेगी। दूसरा खाना बन्द करें, केवल भोजनके सिवाय कुछ न खायें तो भूख लग जायगी, तेज हो जायगी। ऐसे ही केवल भगवान्‌को चाहें, उनके सिवाय और कुछ न चाहें। सुख, मान, बड़ाई, आदर, आराम, आलस्य आदि किसी प्रकारकी इच्छा न हो। किसी भी वस्तुसे सुख न लें। भूख लगे तो रोटी खा लेनी है, नींद आये तो सो जाना है, पर उसमें सुख नहीं लेना है। ऐसा परहेज रखें तो व्याकुलता पैदा हो जायगी।

जीव कुछ-न-कुछ असत्‌का आधार बना लेता है, जिससे वह सत्‌से विमुख हो जाता है। अत: असत्‌का उपयोग कर लें, भोजन कर लें, जल पी लें, सो जायँ, सब काम कर लें, पर भीतर इनका आधार, विश्वास, आश्रय मत रखें, फिर व्याकुलता पैदा हो जायगी।

हम सबको इस बातका प्रत्यक्ष ज्ञान है कि शरीर रहनेवाला नहीं है, सम्पत्ति रहनेवाली नहीं है, कुटुम्ब रहनेवाला नहीं है, यह जो कुछ दीखता है, यह सब रहनेवाला नहीं है। ऐसा जानते हुए भी इस ज्ञानका निरादर करते हैं—यह बड़ा भारी अवगुण है, बड़ी भारी भूल है। यदि इस ज्ञानका आदर करें तो संसारकी इच्छा मिट जायगी; क्योंकि जो वस्तु स्थिर है ही नहीं, उसकी क्या इच्छा करे? *‘का माँगू कछु थिर न रहाई। देखत नैन चल्यो जग जाई॥’* संसारकी इच्छा मिटते ही भगवान्‌का विरह आ जाता है। संसारकी इच्छा, आशा ही भगवान्‌के विरहको रोकनेवाली वस्तु है।

मनुष्य जिसे नाशवान् जानता है, फिर भी उसकी आशा रखता है तो यह बहुत बड़ा अपराध करता है। झूठ-कपट करके, जालसाजी-बेईमानी करके अपनी असत् भावनाको दृढ़ करता है, तो इससे बढ़कर अनर्थ क्या होगा? धन है, बेटा-पोता है, बल है, विद्या है, योग्यता है, पद है, अधिकार है, ये कितने दिनसे हैं? कितने दिन रहेंगे? इनसे कितने दिन काम चलायेंगे? इनके साथ जितने दिन संयोग है, उसका वियोग होनेवाला है। वह वियोग शीघ्र हो, देरीसे हो, कब हो, कब नहीं हो—इसका पता नहीं, पर संयोगका वियोग होगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिनका वियोग हो जायगा, उनपर विश्वास कैसे? जो प्रतिक्षण बिछुड़ रहा है, उसे कबतक निभायेंगे? वह कबतक सहारा देगा? वह कबतक आपके काम आयेगा? फिर भी उसपर विश्वास करना अपनी जानकारीका स्वयं निरादर करना है। अपनी जानकारीका अनादर करना बहुत बड़ा अपराध है। अपराध पापोंसे भी तेज होता है। जो ‘परमात्मा है’—इसे मानता नहीं और ‘संसार है’—इसे मानता है, वह महान् हत्यारा है, पापी है।

आप जानते हैं कि संसार नहीं रहेगा, शरीर नहीं रहेगा, फिर भी चाहते हैं कि इतना सुख ले लें, इतना लाभ ले लें, इस वस्तुको ले लें अर्थात् जानते हुए भी मानते नहीं! इसमें अनजानपनेका दोष नहीं है, न माननेका दोष है, जो आपको स्वयं दूर करना पड़ेगा। जानकारीकी कमी होगी तो जानकार लोग बता देंगे, शास्त्र बता देंगे, संत-महात्मा बता देंगे, भगवान् बता देंगे, पर जाने हुएको आप नहीं मानेंगे तो इसमें दूसरा कुछ नहीं कर सकेगा। मानना तो आपको ही पड़ेगा, इतना काम आपका स्वयंका है।

श्रीगंगाजीका तीर्थत्व एवं माहात्म्य

(मलूकपीठाधीश्वर संत श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज)

श्रीहरिहरात्मिका-विष्णुपादाब्जसम्भूता, ब्रह्मद्रवस्वरूपा, त्रिभुवनपावनी, पतितपावनी भगवती भागीरथी गंगाकी महिमा वेदेतिहासपुराणस्मृति-धर्मशास्त्र और सन्तवाणीमें प्रभूत मात्रामें गायी गयी है। वस्तुत: 'तीर्थ' पद चरितार्थ ही गंगाजीके स्वरूपमें होता है। किसी भी जलमय तीर्थमें तीर्थत्वका आधान करना होता है तो उसे हमारे शास्त्र गंगाके रूपमें व्यवहृत करते हैं। अनेक पवित्र पौराणिक कुण्ड-सरोवर-कूप-नदी आदिको जब तीर्थके रूपमें प्रतिपादित करना होता है तो उसे 'गंगा' कह दिया जाता है। जैसे हमारे ब्रजमण्डलमें श्रीगोवर्धनमें स्थित कुण्डको मानसी गंगाके रूपमें स्वीकार किया जाता है। उत्कलप्रान्तमें श्रीगीतगोविन्दकार जयदेवमहाप्रभुके लिये सरोवरमें श्रीगंगाजी प्रकट हुईं, उस सरोवरको आज भी जयदेवी गंगा कहा जाता है। व्रजके अनेक पौराणिक सरोवरोंको गंगाका स्वरूप माना जाता है। व्रजमें भाण्डीरकूपके रूपमें गंगाजीको ही स्वीकार करते हैं। श्रीगंगाजीसे भिन्न नदियोंकी निरतिशय पावनताका निरूपण गंगाजीके रूपमें करते हैं। जैसे—गण्डकीको शालग्रामी गंगा, सरयूको रामगंगा, यमुनाको कृष्णगंगा, दक्षिण भारतकी पुण्य नदियोंको गोदावरी गंगा, कावेरी गंगा, वेत्रवती गंगा, गौतमी गंगा आदिके नामसे जानते हैं।

'धन्य देस सो जहँ सुरसरी।' कहकर श्रीतुलसी-दासजीने गंगाजीके प्रति भाव निवेदित किया है। श्रीतुलसी-साहित्यमें गोस्वामीजीकी गंगाप्रीति छलकती हुई दिखायी पड़ती है। श्रीयमुनातटपर जन्मे महात्मा तुलसीदासजीने अन्तिम क्षण गंगातटपर निवासकर काशीलाभ प्राप्त किया था। इसी प्रकार जगद्गुरु श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यजीने अन्तिम क्षणतक काशीके पंचगंगाघाटपर वास करते हुए गंगासेवन किया। आचार्यचरणके शिष्य—श्रीअनन्तानन्द, सुखानन्द, योगानन्द, गालवानन्द, सुरसुरानन्द, भावानन्द, रैदास, कबीर आदिने भी श्रीगंगाजीका आश्रय लिया था।

हमने अपने गुरुजनोंसे सुना है कि किसी अति सरल श्रद्धावान् विश्वासी ब्राह्मणदेवताने पढ़ा था कि—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

अर्थात् सैकड़ों योजन दूरसे भी जो—गंगा-गंगा ऐसा उच्चारण करता है, वह सर्वपापसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है।

माहात्म्यमें श्रद्धा-विश्वास रखकर वह सरलमति ब्राह्मण गंगास्नान इस भयसे नहीं करता कि कहीं स्नान करते ही विष्णुलोक चले गये तो परिवारका क्या होगा?

एक दिन संसारके सम्पूर्ण कर्तव्य-कर्मसे मुक्त होकर वह ब्राह्मण सबसे विदा माँगकर हरिद्वार गंगास्नानके लिये गया, गोता लगाया, किंतु जब वैकुण्ठ नहीं गया तो आश्चर्यचकित होकर विचार करने लगा कि शास्त्रवचन तो सर्वथा सत्य हैं, फिर अनुभूति उस प्रकारकी क्यों नहीं हो रही है? विचार कर ही रहा था कि देवर्षि नारदजीका दर्शन हुआ। प्रणामकर पूछा कि नारदजी आप ही बतायें, मैं माहात्म्यके अनुसार वैकुण्ठ क्यों नहीं गया?

श्रीनारदजीने कहा शास्त्रवचन सत्य हैं, गंगाजीकी जितनी महिमा गायी गयी है, उससे कई गुना अधिक उनकी महिमा है। आपके विष्णुलोक न जानेमें क्या हेतु है—यह मुझे समझमें नहीं आ रहा है। मेरे पिता ब्रह्माजीने भगवान् वामनका चरण धोकर गंगाजीको प्रकट किया, उन्हें कमण्डलुमें रखा, आपके प्रश्नका उत्तर वे अवश्य बतायेंगे। चलो, ब्रह्मलोक चलें।

नारदजी ब्राह्मणको लेकर ब्रह्मलोक पहुँचे, ब्राह्मणकी मुक्तिविषयक जिज्ञासा प्रकट की तो ब्रह्माजीने कहा—वत्स! गंगाकी महिमा अनन्तगुणित है, मैंने भगवान्‌के चरण धोकर उन्हें कमण्डलुमें विराजमान अवश्य किया, किंतु सम्पूर्ण माहात्म्य तो भूतभावन विश्वनाथ, जिनकी जटाओंमें गंगाजी विराजमान हैं, वे ही जान सकते हैं। श्रीनारदजी और ब्रह्माजी ब्राह्मणको लेकर शिवलोक पहुँचे और माहात्म्य-श्रवणकी जिज्ञासा की तो भगवान् शिवने कहा कि ब्रह्मद्रवा भगवच्चरणोदकभूता गंगा मेरी जटाओंमें शोभायमान होती हैं, किंतु सम्पूर्ण माहात्म्य मैं भी नहीं कह सकता, जिनके चरणोंसे प्रकट हैं, उन्हीं नारायणसे पूछा जाय। ब्रह्माजी, शंकरजी, नारदजी एवं ब्राह्मण वैकुण्ठ पहुँच गये। भगवान्‌से पूछा, भगवान्‌ने हँसते हुए कहा—शास्त्रवचनमें श्रद्धा-विश्वासके फलस्वरूप ब्राह्मणको मेरे ही स्वरूप नारदजीका दर्शन हुआ। सदेह ब्रह्मलोक, शिवलोकका भी दर्शन हुआ और अब आपकी कृपासे यह वैकुण्ठ आ गया, अत: इस ब्राह्मणको मेरी गोदमें बैठा दो—यही तात्पर्य इस गंगा-माहात्म्यके श्लोकका है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी गंगा-स्तुति

(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)

गंगाजीका स्वरूप अनुपम तथा उनकी महिमा अपार है। अनादिकालसे ही गंगा हमारी धार्मिक श्रद्धा एवं आस्थाकी जीवनधारा रही हैं। जैसे सरस्वती अन्तः सलिला हैं, वैसे ही गंगा हमारे भीतर विद्यमान चिन्मय सत्ता एवं गतिशीलताकी प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृतिमें गंगा एक सामान्य वारिधारा अथवा नदीमात्र न होकर हमारे धार्मिक एवं बौद्धिक इतिहासकी विकासमयी चेतना रही हैं। 'जल ही जीवन है' यह तथ्य इस बातका द्योतक है कि जलकी प्रवाहिका शक्ति अथवा उसके प्रवाहमें निहित ऊर्जा परमात्माकी ही वह दिव्य शक्ति है, जो सम्पूर्ण सृष्टिका संचालन करती है। इसीलिये जलके अजस्त्र प्रवाहमें, उसकी निर्मलतामें हमें परमात्माकी पवित्रताके दर्शन होते हैं। तभी तो गंगाकी पुण्यधर्मी निर्मलताको जीवनकी शुचिताका प्रेरक माना गया है तथा गंगाजलको आदरपूर्वक अमृत कहा गया है। हमारी सनातन संस्कृतिमें जिन पवित्र सदानीरा सरिताओंका अपनी अन्तः तथा बाह्यशुद्धिके लिये कृतज्ञतापूर्वक आवाहन किया जाता है, उनमें गंगाका स्थान सर्वोपरि है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

ध्यातव्य है कि नदियों और मानवके अन्योन्याश्रय सम्बन्धकी स्पष्ट व्याख्या हमें ऋग्वेदके तीसरे मण्डलके तैंतीसवें सूक्त (३। ३३)-में विश्वामित्र और नदियोंके संवादमें मिलती है। ऋग्वेदके ही दशम मण्डलमें 'नदी-सूक्त' में भारतकी जिन प्रमुख नदियोंका वर्णन है, उनमें गंगा प्रथम हैं—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥

(ऋग्वेद १०। ७५। ५)

गोस्वामीजीकी गंगा-स्तुति—अपनी उत्कृष्ट एवं कालजयी कृतियोंमें गोस्वामीजीने गंगाकी अलौकिक महत्ताका यत्र-तत्र बड़ा ही भावपूर्ण तथा रोचक वर्णन किया है। 'श्रीरामचरितमानस' के अतिरिक्त जिन अन्य रचनाओंमें गंगा-महिमाका उल्लेख है, वे हैं—कवितावली (३ पद), विनय-पत्रिका (४ पद) तथा प्रसंगानुकूल वर्णनवाले अन्य ग्रन्थ। इन्हींको केन्द्रमें रखकर निम्नलिखित पंक्तियोंमें गंगाकी महत्तापर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

स्मरण रहे कि गोस्वामीजी जब काशीवास कर रहे थे, तब उनका यह दृढ़ विश्वास था कि भवानी-शंकर तथा पुण्यसलिला गंगाजीकी अमित कृपामें उन्हें प्रभु श्रीरामकी निर्भरा भक्ति प्रदान करनेकी पूर्ण क्षमता है। तभी तो 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने शंकरजी तथा भवानीजीकी वन्दनाके तुरंत बाद त्रय-ताप-हारिणी गंगाजीकी वन्दना की है। गोस्वामीजी गंगाजीको परब्रह्म परमात्माका जलरूप ही मानते थे—

ब्रह्मु जो ब्यापकु बेद कहैं, गम नाहिं गिरा गुन-ग्यान-गुनीको।

× × × × ×

सोइ भयो द्रवरूप सही, जो है नाथु बिरंचि महेस मुनीको।

(कवितावली पद १४६)

गंगाजीको 'ब्रह्ममयवारि' कहनेकी पृष्ठभूमिमें सम्भवतः गोस्वामीजीके मनमें गंगाके उद्भवकी वह पौराणिक कथा विद्यमान थी, जिसमें सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने उसे सर्वश्रेष्ठ मानकर अपने कमण्डलुमें रख लिया। कालान्तरमें ब्रह्माजीने वामनावतार विष्णुभगवान्‌के चरणोंको उसी जलसे धोकर पूजन किया। भगवान्‌के चरणोंका वह धोवन हेमकूट पर्वतपर गिरा, जिसे शंकरजीने अपनी जटाओंमें धारण कर लिया। तत्पश्चात् भगीरथ उसे अपनी तपस्यासे पृथ्वीपर ले आये। भगवान्‌के चरणोंका धोवन होनेके कारण ही गंगाजीको गोस्वामीजीने ***'बिस्नु-पद-सरोजजासि'*** (वि० प० १७) तथा ***'विष्णु-पदकंज-मकरंद'*** (वि० प० १८। २) आदि विशेषणोंसे विभूषित किया है। वही गंगा **'मिलित जलपात्र-**

अजयुक्त-हरिचरणरज, विरज-वर-वारि त्रिपुरारि शिर-धामिनी' है अर्थात् हे गंगे! भगवच्चरणरेणुसहित तुम्हारा जल ब्रह्माके कमण्डलुमें भरा रहता है। तुम शिवजीके मस्तकपर विराजती हो। वे आगे कहते हैं—***'स्वर्ग-सोपान, विज्ञान-ज्ञानप्रदे, मोह-मद-मदन-पाथोज-हिमयामिनी।'*** (वि० प० १८।३) अर्थात् हे जाह्नवी! तुम स्वर्गकी निसेनी और ज्ञान-विज्ञान प्रदान करनेवाली हो। तुम मोह, अहंकार और कामरूपी कमलोंके नाशके लिये मानो शिशिर-ऋतुकी रात्रि हो।

गंगाको 'त्रिपथगासि' (वि० प० १७) कहकर गोस्वामीजीने उसे तीन मार्गों अथवा धाराओं अर्थात् स्वर्ग, पृथ्वी और पातालमें प्रवाहित होनेवाली बताकर क्रमशः उसे 'मन्दाकिनी' (आकाशगंगा), गंगा तथा भोगावती (प्रभावती या पातालगंगा) नामसे विख्यात होना कहा। ऐसा कहनेसे उनका संकेत है कि त्रिपथगा पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको परमगति देती है, यथा ***'सुर-नर-मुनि-नाग-सिद्ध-सुजन मंगल-करनि।'*** (वि० प० २०।१) अथवा यों कहें कि देव, मनुष्य, नाग, मुनि, सिद्ध और सन्त—सभीके दैहिक, दैविक तथा भौतिक त्रिविध तापों तथा दुःख, दोष, दुरित, दाह-दारिद (दारिद्र्य)-का नाश तुम्हारे दर्शनमात्रसे हो जाता है, यथा ***'देखत दुख-दोष-दुरित-दाह-दारिद दरनि॥'*** (वि० प० २०।२) उन्होंने गंगाजीकी दैवी शक्ति 'पाप-छालिका', 'त्रयताप-हारि' तथा 'मोह-महिष-कालिका' अर्थात् पापोंको धोकर नष्ट कर देनेवाली, दैहिक, दैविक तथा भौतिक इन तीनों तापोंको हरनेवाली तथा अज्ञानरूपी महिषासुरका संहार करनेवालीमें पूर्ण आस्था एवं दृढ़ विश्वास रखते हुए उन्हें अपनी मातावत् मान लिया था। अतएव वे आश्वस्त थे कि माता-स्वरूपा गंगाजी उन्हें पुत्रवत् मानकर उनके समस्त अपराधोंको क्षमाकर उन्हें रघुपतिचरणरति प्रदान करायेंगी। तभी तो उन्होंने निश्चय किया था कि वे काशीमें गंगातटपर श्रीरघुवीरके होकर रहेंगे। वे कहते हैं कि हे भागीरथि! भले ही मुझे बारम्बार शरीर धारण करना पड़े, मैं तो श्रीरघुनाथजीका दास होकर तुम्हारे ही तटपर सदा वास करूँगा। यथा ***'बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीरको ह्वै तव तीर रहौंगो। भागीरथी! बिनवौं कर जोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥'*** (कवितावली पद १४७) गंगातटवासी बनकर ही गोस्वामीजी हरिभक्तिमें लीन रहनेकी कामना करते हैं। तभी तो गंगाजीको 'भक्ति-कल्पथालिका' अर्थात् भक्ति-रूप कल्पवृक्षके लिये थाल्हा (आधार)-सदृश होनेवाली कहकर उन्होंने उनसे प्रार्थना की है कि तुम मुझ तुलसीदासको ऐसी बुद्धि दो, जिससे मैं श्रीरघुनाथजीके नामका सतत स्मरण करता हुआ तुम्हारे तीर-तीर विचरण कर सकूँ, यथा ***'तुलसी तव तीर तीर सुमिरत रघुबंस-बीर, बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका॥'*** (वि० प० पद १७।३) उन्होंने गंगाजीको 'अमित-महिमा, अमितरूप (वि० प० पद १८।५) अर्थात् असीम महिमा तथा अनुपम रूपवाली कहकर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनोंकी महिमाकी सीमा बढ़ाने अथवा प्रतिष्ठित करनेवाली बताया है—***'महिमाकी अवधि करसि बहु बिधि हरि-हरनि।'*** (वि० प० पद० २०।३) तात्पर्य यह है कि गंगाजी स्वयं तो महिमाकी अवधि (पराकाष्ठा) हैं ही, अपितु उन्होंने ब्रह्माजीके कमण्डलुमें रहनेसे, विष्णुके चरणोंसे निकलनेसे तथा शिवजीके मस्तकपर विराजनेसे—इन तीनों देवताओंकी महिमाको अन्तिम सीमा (पराकाष्ठा)-तक पहुँचा दिया। इसीलिये वे क्रमशः ब्रह्मकमण्डलवासिनि, विष्णुपदी तथा जटाशंकरी कहलायीं।

कुछ विद्वानोंका मत है कि 'विनय-पत्रिका' में वर्णित गंगा-स्तुतिवाले चार पदों (१७, १८, १९ तथा २०)-में गोस्वामीजीकी फलचतुष्टय (अर्थात् धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष)-की कामना परिलक्षित होती है। प्रथम पद 'काम' का, द्वितीय 'धर्म' का, तृतीय 'मोक्ष'

का तथा चतुर्थ 'अर्थ' का द्योतक है। अन्य मनीषियोंका मत है कि 'त्रिपथगा' होनेके कारण गोस्वामीजीने प्रथम तीन पदोंमें गंगाजीकी अलौकिकता (अद्भुत शक्ति) प्रदर्शित की तथा चतुर्थ पदमें भव-भामिनी (शिवपत्नी पार्वती)-के रूपमें अपनी निजी या वैयक्तिक रुचि व्यक्त की; क्योंकि वे शंकरजी तथा पार्वतीजीको ही अपना माता, पिता तथा गुरु मानते थे, यथा ***'तुलसीकी सुधरै सुधारे भूतनाथहीके। मेरे माय बाप गुरु संकर-भवानिये॥'*** (कवितावली ७। १६८। ७-८) गंगाजीकी असीम अनुकम्पाकी याचना करते हुए वे प्रार्थना करते हैं कि हे शिवप्रिये! हे भव-भयहारिणि! मुझ तुलसीदासको श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें अनन्य प्रेम अथवा पूर्ण निर्भरा भक्ति प्रदान कीजिये—***'देहि रघुबीर-पद-प्रीति निर्भर मातु, दासतुलसी त्रासहरणि भवभामिनी।'*** (वि० प० पद १८। ५) गोस्वामीजी कलियुगमें सद्‌गतिके लिये दो ही आधार (साधन) मानते थे—एक श्रीरामनाम तथा दूसरा देवनदी गंगाजीका पवित्र जल। उन्होंने स्पष्टतया कहा है—***'कलि पाषंड प्रचार प्रबल पाप पावँर पतित। तुलसी उभय अधार राम नाम सुरसरि सलिल॥'*** (दोहावली ५६६) वे आगे कहते हैं कि यदि ऐसी अलौकिक पतितपावनी गंगा न होती तो कलियुग न जाने क्या-क्या अनर्थ कर डालता और तुलसीदास इस अपार संसार-सागरको कैसे पार कर पाता? ***'तो बिनु जगदंब गंग कलिजुग का करित? घोर भव अपारसिंधु तुलसी किमि तरित॥*** (वि० प० पद १९। ३)

'श्रीरामचरितमानस' में गंगाजीकी अद्भुत, मंगलदायिनी तथा त्रैलोक्यसुखदायिनी महिमाकी भगवान् श्रीरामने स्वयं अपने श्रीमुखसे सराहना करते हुए कहा है—***'गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥*** (२। ८७। ४) अर्थात् गंगाजी समस्त आनन्द-मंगलोंकी मूल हैं। वे सब सुखोंको देनेवाली तथा सब पीड़ाओंको हरनेवाली हैं। विचारणीय है कि अयोध्यामें सरयूकी अपार महिमामें जो कुछ गोस्वामीजीने कहा है, वह कथन गंगाजीपर भी अक्षरशः लागू होता है—यथा ***'दरस परस मज्जन अरु पाना। हरइ पाप कह बेद पुराना॥ नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकइ सारदा बिमल मति॥'*** (रा०च०मा १। ३५। १-२) वास्तवमें गंगाजीका स्मरण, दर्शन, स्पर्श, स्नान तथा पान अत्यन्त कल्याणकारी है तथा सभी प्रकारकी शुद्धि प्रदान करता है।

गंगाजी सभीको शुभगति देनेवाली हैं। गीतावलीमें वर्णित सीता-वनवासमें वाल्मीकिजी शिक्षा देते हुए

सीताजीसे कहते हैं कि पुत्रि! तुम आलसियोंको भी शुभगति देनेवाली गंगाजीकी मन लगाकर सेवा करना—***'आलसिन्हकी देवसरि सिय सेइयहु मन मानि॥'*** (गीतावली उत्तरकाण्ड ३२। ३) इस प्रकार गोस्वामीजीने भगवती भागीरथी गंगाजीका अपने काव्योंमें अत्यन्त भव्य एवं महिमामय रूपसे वर्णन किया है। वस्तुतः गोस्वामीजीका जीवन भी श्रीगंगाजीके साथ रच-बस गया था। उनके जीवनका अधिकांश भाग भागीरथीके तटपर ही बीता, जिससे उन पुण्यमयीका दरस, परस और स्पर्श उनके जीवनका अंग बन गया था और अन्तमें उन्हींकी पुण्य सन्निधिमें उन्होंने अपनी लोकयात्रा पूरी की—

रामनाम जसु बरनि अब चहत होन यह मौन।
तुलसीके मुंह दीजिये तुलसी सुरसरि सोन॥

माँ गंगाके जलप्रवाहमें प्रभुका प्रेमप्रवाह बहता है

(श्रीबालकृष्णजी मेहता)

अद्वितीय और अलौकिक भारतीय संस्कृति गीता, गोविन्द, गायत्री और गंगाजीके कारण आज भी विश्वभरमें अपनी महक फैला रही है, इन सभीका पावित्र्य और इनकी यथार्थता आज भी प्रेरक और स्फूर्तिप्रद है। गंगा समस्त ब्रह्माण्डोंकी अधिष्ठात्री, विद्यारूपिणी, आरोग्यदायिनी, करुणामयी, आनन्दमयी, जीवनदायी, मंगलमयी, ज्ञान-कर्म और भक्तिकी त्रिवेणीरूपा, विशुद्ध धर्मरूपिणी तथा भुक्ति-मुक्तिदायिनी जो मानी जाती हैं, यह बिलकुल सही है। एक दैवी मातृस्वरूपा माँ गंगा परम तीर्थके रूपमें सर्वत्र व्याप्त हैं।

अविरत कर्मयोग करनेवाले भगीरथके प्रयत्नोंसे अवतरित हुईं भागीरथी मानवमात्रको कर्मयोगका चिरंतन सन्देश देती हैं। अपने लक्ष्यको ध्यानमें रखकर अविरल गतिसे दौड़ती, उछलती, अपने उज्ज्वल कर्मयोगसे अनन्त गाँवोंको फलद्रुम बनाती हैं। गंगा, जो सागरमें मिलकर भगवान् विष्णुके चरणोंका पूजन करती हैं, समर्पण-भक्ति और ध्येयनिष्ठाका उत्कृष्ट सन्देश दे रही हैं।

मानव भी ज्ञान प्राप्त करके अविरत कर्मयोग करते-करते अन्तमें अपना जीवन परम कृपावन्त भगवान्के चरणोंमें समर्पित करे तो वह भी गंगामैया-जैसा पावन हो सकता है।

गंगास्नानके पीछे सबसे बड़ी प्रभावित करनेवाली विशेषता जो मेरे दिलको छू लेती है, वह है भावपूर्वक स्नानकी बात। भावनाशून्य सिर्फ शरीरको स्वच्छ करता है, जबकि भावयुक्त स्नान शरीरके साथ मन, बुद्धिको भी शुद्ध बनाकर जीवनको पावन करता है।

देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

देव, तीर्थ, द्विज, मन्त्र, ज्योतिषी, वैद्य और गुरु—इनके बारेमें जैसी जिनकी श्रद्धा होगी, वैसा उनके जीवनमें फल मिलेगा।

'गंगा-स्नानसे मुझमें पावित्र्य निर्माण होगा ही' इस श्रद्धासे यदि स्नान किया जाय तो वह स्नान मनुष्यके अन्त:करणमें न केवल पावित्र्यका ही निर्माण करेगा, बल्कि गंगाका स्मरण मानवके मनमें भाव-जागृति, उत्साह और प्रकाशका सृजन करेगा।

गंगाकी प्रेरणा—माँ गंगाके किनारे अनन्त ऋषियोंने मानवी जीवनको उन्नत बनानेके लिये तपस्या की है, हजारों ऋषियोंने गंगाके तटपर अपने आश्रम बनाकर ज्ञानकी उपासना की है। ऋषियोंने मानवको मानव बनाया है, गंगाजीकी तरह ऋषियोंने मानवको जीवन दिया है। ऋषियोंने ही मानवमात्रमें अपना जीवन चलानेवाले ईश्वरका सान्निध्य और सामीप्य समझाया। '**ऋषति गच्छति संसारपारं इति ऋषि:**' ऐसी ऋषिकी व्याख्या है। ऋषिकी आँखोंके सामने संसारके इह लौकिक और पारलौकिक कल्याणका स्पष्ट दर्शन होता है।

माँ गंगाके तटपर बैठकर पवित्र ऋषिगणकी प्रतिमा आँखोंके सामने आती है, ऋषियोंका मानव-समाजपर अन्त:करणका प्रेम होता है। पतिव्रता स्त्री जिस तरह पतिके घरको स्वच्छ और अच्छा रखनेका प्रयत्न करती है, उसी तरह ऋषि भी अपने स्वामी भगवान्के घर जगत्को विशुद्ध रखनेका अहर्निश प्रयत्न करते रहते हैं। उनकी समाज-सेवा या जगत्-सुधारणा भक्तिके उदरसे जन्म लेती है और उसकी नींवमें प्रभुप्रेम होता है।

गंगाका भव्य इतिहास जिसे ज्ञात है, वह माँ गंगाके दर्शनसे रोमांचका अनुभव करता है। उसमें स्नान करके अपनेको कृतार्थ समझता है और वहाँसे कोई अद्भुत प्रेरणा लेकर वापस लौटता है।

गंगाका किनारा एक समय सच्चे अर्थमें तपोभूमि था। उसके तटपर ब्रह्मर्षियोंने तप किया है और अनेक राजर्षियोंने अपने राज्यको छोड़ दिया है। गंगा समाजमें ईशस्पर्शी विचार ले जानेकी प्रेरणा देनेवाला ज्ञानवारि है। यही गंगामैया हैं, जिनका स्तनपान करके पुष्ट हुई उसकी संतान-जैसी काशी तो विद्याका तीर्थधाम रही है।

गंगामैया याने पवित्रताका प्रेमप्रवाह—प्रभुके चरणोंसे निकला हुआ पावित्र्य शिवजीके मस्तकपर उतरा और वहाँसे सेवाकी दीक्षा ग्रहण करके प्रवाहरूपमें पृथ्वीपर बहने लगा।

गंगा इसलिये भी पवित्र है कि व्रतनिष्ठ, चारित्र्य-सम्पन्न, तेजमूर्ति भीष्मको उन्होंने जन्म दिया है।

श्रीमद् आद्यशंकराचार्यजी भी माँ गंगाका विचार करके भावार्द्र हो जाते हैं—

रोगं शोकं तापं पापं हर मे भगवति कुमतिकलापम्।
त्रिभुवनसारे वसुधाहारे त्वमसि गतिर्मम खलु संसारे॥

हे भगवति! तू मेरा रोग, शोक, ताप, पाप और कुमतिका नाश कर दे, तू त्रिभुवनका सार है, वसुधाका हार है। देवी! इस संसारमें तू ही मेरी गति है, गंगाका माहात्म्य अनेक ऋषि-मुनियोंने भावसे गाया है।

रामायण-जैसे पावनकारी ग्रन्थके सर्जक महर्षि वाल्मीकिने गंगामैयाकी कितनी आर्द्रतासे प्रार्थना की है—

गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्।
त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम्॥

मुरारिके चरणोंसे उत्पन्न होनेवाली, त्रिपुरारि शंकरके सिरपर जो विराजमान है, वह गंगाजल मेरे पाप हरकर मुझे पावन करे।

गंगामैयाका महिमा-गान किसने नहीं किया है? एक स्थलपर कथन है—

यत्तीरे वसतां सतामपि जलैर्मूलैः फलैर्जीवतां
मुक्ताहंममभावशुद्धमनसामाचारविद्यावताम् ।
कैवल्यं करबिल्वतुल्यममलं सम्पद्यते हेलया
सा गंगा ह्यतुलामलोर्मिपटला सद्भिः कुतो नेक्ष्यते॥

भाव यह है कि जिनके तटपर जल, फल, मूलादिके द्वारा जीवनयापन करनेवाले अहन्ता-ममतासे रहित शुद्ध चित्तवाले, सदाचारी विद्वानों, मुक्त पुरुषोंको विशुद्ध मोक्षसुख करतलगत बिल्वफलके समान तुच्छ प्रतीत होता है अर्थात् जिनकी सन्निधिके समक्ष मोक्षसुख भी साधारण ही है, ऐसी उन अतुलनीया, निर्मला तथा तरंगमयी भगवती गंगाका सत्पुरुषोंके द्वारा सेवन क्यों नहीं किया जाता!

गंगामाताका स्मरण हमें कई पवित्र महापुरुषोंकी याद दिलाता है। पण्डितराज जगन्नाथजी गंगालहरीमें जिस तरहसे गंगामैयाका वर्णन करते हैं, उससे तो हृदय भर आता है। पण्डितजीके एक-एक शब्द और महिमा-स्तुति हमारे दिलको छू लेते हैं—

समृद्धं सौभाग्यं सकलवसुधायाः किमपि तन्
महैश्वर्यं लीलाजनितजगतः खण्डपरशोः।

गंगालहरीके ऊपर पूज्य पाण्डुरंग शास्त्री आठवले (पूज्य दादाजी)-ने अतिशय मधुर और जीवनस्पर्शी प्रवचन कई साल पहले दिये हैं, वे कहते हैं कि गंगा मतलब प्रभुकी बहती हुई करुणा। प्राकृतिक लोगोंके लिये पानी जीवन है, लेकिन भक्तोंकी दृष्टिसे पानी—यह तो प्रभुकी करुणा है, प्रभुकी जीवन्त करुणाका प्रवाह है। पानीमें एक विशिष्ट दिव्यता Divinity है, नींदमेंसे उठकर थोड़ा-सा पानीसे आँख धो डालो और देखिये कितनी स्फूर्ति आ जाती है, चैतन्य प्राप्त होता है।

संस्कृतमें गंगाका अर्थ है—**गंगा = 'गम्यते प्राप्यते भगवत् पदं येन सा गङ्गा।'** पाण्डुरंग शास्त्रीजीने गंगाकी प्रेरक महिमा समझायी है। मानव-जीवनमें सतत गंगा-जैसा प्रभुका प्रेम बहता रहता है, यह जो प्रभुका प्रेमप्रवाह है, वही गंगा है। भगवान् माँ-जैसा है, मेरी देखभाल करता है, सोचिये, सुबहमें कौन मुझे उठाता है? सुबहमें कौन मेरी आँखे खोलकर, मेरी चली गयी स्मृतिको वापस देता है? रातको सोते वक्त अगर स्मृति छोड़ दूँ, तब ही मैं सो सकता हूँ और नींद आ सकती है। सफेद रंगकी रोटीका लाल लहू कौन बनाता है? Who awakes me in morning, Who induces sleep at night, who digests my food? Who runs my metabolism? भगवान्ने केवल मनुष्य-जन्म दिया है—इतना ही नहीं, मेरे शरीरमें आकर बसा है, मेरा जीवन चलाता है, सफेद रोटीका लाल खून (Blood) वही ही बनाता है न?

गंगामैया-जैसा पवित्र प्रेमप्रवाह प्रभुकी करुणा मेरे शरीरमें बहती रहती है, यूँ दादाजी कहते हैं कि गंगा-जैसा पवित्र, प्रभुका प्रेमप्रवाह जिस शरीरमें सदा बहता रहता है, अगर यह समझ मनमें दृढ़ हो गयी तो जीवनमें गंगा-स्नानका पावित्र्य आ गया समझो।

'गम्यते प्राप्यते भगवत्पदं येन सा गङ्गा।'

प्रभुका प्रेमप्रवाह मेरे साथ ही जुड़ा हुआ है, अगर यह समझ न आयी तो समझो कि जीवन पापसे भरा हुआ है, फिर चाहे कितनी बार गंगास्नान क्यों न किया हो।

कई सांसारिक पुरुषोंने माँ गंगाके तटपर बैठकर जीवनकी परम शान्ति और मुक्ति पायी है, जीवनका लक्ष्य पाया है। कल··· कल करके बहती माँ गंगा हमें सिखाती है कि जीवनमें शान्तिसे कर्मयोग करते रहो। मेरी गोदमें आकर बैठनेवाले सभीको मैं शान्ति, शीतलता और पावित्र्य प्रदान करती हूँ··· बिना आभार या धन्यवादकी अपेक्षा रखकर।

साधन-सूत्र

[जीवात्मासे परमात्मातककी यात्रा]

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

उपनिषदोंमें परब्रह्म परमेश्वरके स्वरूप, महत्त्व एवं उसकी प्राप्तिके साधनोंपर विस्तारसे वर्णन किया गया है। जहाँ विविधताभरे नाम-रूपात्मक जगत्‌के आकर्षणमें जीवात्मा अपनेको भुला बैठता है, वहीं उपनिषद् हमें इस नाशवान जगत्‌के नियन्ता अविनाशी परमतत्त्वकी ओर ले जाते हैं, जो हमें पूर्ण आनन्द प्रदान करता है, जहाँ जीवको परम शान्तिकी प्राप्ति होती है तथा वह अपने अंशीसे अभिन्न होकर आवागमनसे मुक्त हो जाता है। ऐसा ही एक उपनिषद् मुण्डक-उपनिषद् है, जिसका शुभारम्भ अन्य उपनिषदोंकी भाँति शान्ति-पाठसे होता है—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

भाव यह है कि गुरु और शिष्य मानवमात्रका कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओंसे प्रार्थना करते हैं कि हम अपने कानोंसे सदैव शुभ वचन ही सुनें; हम सदैव भगवान्‌की आराधनामें लगे रहें; हम नेत्रोंसे सदा शुभका ही दर्शन करें। हमारे शरीरका प्रत्येक अंग सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो तथा हमारा जीवन भगवान्‌के काम आ सके। सभी देवता हमपर कृपा करें तथा हमारे द्वारा प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोंकी शान्ति हो।

उपनिषदोंकी यह ब्रह्मविद्या ऋषियोंके मुखसे आगे बढ़ती रही है। एक बार अट्ठासी हजार ऋषियोंके आचार्य महर्षि शौनक श्रद्धापूर्वक महर्षि अंगिराके पास आये और उनसे जिज्ञासा व्यक्त की कि प्रभो! वह परम तत्त्व क्या है, जिसे जान लेनेपर सब कुछ जाननेमें आ जाता है? महर्षि अंगिराने इसपर कहा कि मनुष्यके लिये जाननेयोग्य दो विद्याएँ हैं—एक तो परा और दूसरी अपरा। इस लोक और परलोकके भोगों और सुखोंकी जो विद्या जानकारी देती है, वह तो अपरा विद्या कहलाती है तथा जिस विद्याके द्वारा अविनाशी परमात्माको जाना जाता है, वह परा विद्या है। ऋषि परमात्माके निराकार और सर्वव्यापक स्वरूपका विवेचन करते हुए तीन दृष्टान्तोंके माध्यमसे समझाते हुए कहते हैं कि जैसे मकड़ी अपने पेटसे जालेको निकालकर निगल जाती है; पृथ्वीपर अनेक प्रकारकी औषधियाँ स्वतः ही उत्पन्न होती हैं तथा मानव-शरीरमें केश, रोएँ और नख अपने-आप बढ़ते रहते हैं, उसी प्रकार परमात्माके संकल्पसे यह समस्त जगत् प्रकट होता है, पोषित होता है तथा प्रलय आनेपर उसी परमात्मामें समा जाता है। उस परमात्माको जान लेनेपर सब कुछ जान लिया जाता है।

अपरा विद्याके बारेमें महर्षि अंगिरा विस्तारपूर्वक समझाते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद—इन तीनों वेदोंमें नित्यप्रति अग्निहोत्र करनेका विधान है, जिनके द्वारा पृथ्वीलोकसे लेकर सत्यलोकतकके सातों लोकोंके भोगोंकी प्राप्ति होती है, किंतु सकाम यज्ञ होनेपर उन

यज्ञोंका फल नाशवान् होता है। भोगोंकी अवधि पूर्ण होनेपर पुनः संसारमें लौटना पड़ता है और नाना प्रकारके जन्मोंमें भटकना पड़ता है। इन सकाम कर्मोंमें रत लोग विषयोंकी आसक्तिके कारण संसारमें सदैव दुःख भोगते रहते हैं तथा मरणोपरान्त विभिन्न नरकों एवं शूकर-कूकर, कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि विभिन्न योनियोंमें जन्मते-मरते रहते हैं।

किंतु इसके विपरीत जो मनुष्य-जन्मका महत्त्व जानते हैं, वे इस शरीरके द्वारा ही अपने वर्ण, आश्रम तथा कर्तव्य-धर्मोंका पालन करते हुए, संयमित और श्रद्धा-युक्त जीवन-यापन करते हुए अविनाशी परम पुरुषको प्राप्तकर अपने जीवनको सार्थक कर लेते हैं। उस परब्रह्म परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये वैराग्यवान् जिज्ञासुको वेदोंको भली-भाँति जाननेवाले परमात्मामें स्थित गुरुके पास जाना चाहिये, जो उसे ब्रह्म-विद्याका उपदेश करे, जिसके द्वारा वह परब्रह्म परमात्माको जान ले। यह प्रथम मुण्डकका विवेचन है।

द्वितीय मुण्डकमें परब्रह्म परमात्माके स्वरूपके बारेमें विस्तृत विवेचना की गयी है कि वह दिव्य पूर्ण पुरुष निराकार, समस्त जगत्के बाहर-भीतर आकाशकी भाँति व्याप्त, विकारोंसे रहित तथा अविनाशी जीवात्मासे श्रेष्ठ है। अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, दिशाएँ, वायु, पृथ्वी इत्यादि एवं समस्त चराचर जगत् इसका विराट् स्वरूप है। उस परब्रह्मसे कैसे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है, इसपर प्रकाश डाला गया है। उस परब्रह्मकी प्राप्तिको रूपकके माध्यमसे बताया गया है कि ओंकाररूपी धनुषको धारण करके जीवात्मारूपी बाणके द्वारा परब्रह्म परमेश्वरके लक्ष्यको बेधा जा सकता है अर्थात् जीव ओम्का एकाग्रतासे जप करते हुए परमात्माको प्राप्त कर सकता है। संसारका चिन्तन परमात्माकी प्राप्तिमें बाधक है। उस परमात्माको जान लेनेपर हृदयकी अविद्यारूपी गाँठ खुल जाती है, समस्त संशय कट जाते हैं तथा शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

उपनिषद्के तृतीय मुण्डकमें दो पक्षियोंके दृष्टान्तद्वारा बड़े ही सुन्दर रूपकका चित्रणकर जीवात्मा-परमात्माके सम्बन्धोंपर विवेचना की गयी है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥

एक साथ रहनेवाले तथा परस्पर सखाभाव रखनेवाले दो पक्षी—जीवात्मा और परमात्मा एक ही शरीररूपी पीपलके वृक्षका आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनोंमेंसे एक तो (जीवात्मा) उस वृक्षके सुख-दुःखरूप कर्म-फलोंका आसक्ति-द्वेषपूर्वक स्वाद लेकर उपभोग करता है किंतु दूसरा (परमात्मा) न खाता हुआ केवल देखता रहता है अर्थात् निर्लिप्त रहता है। जीवात्मा शरीरकी गहरी आसक्तिमें डूबा हुआ है तथा असमर्थतापूर्वक दीन-हीन अनुभव करता हुआ मोहित होकर शोक करता रहता है किंतु जब कभी भगवान्की कृपासे वह भक्तोंके द्वारा नित्य सेवित अपनेसे भिन्न उस परमात्माको और उनकी महिमाको जान लेता है तो वह सर्वथा शोकरहित हो जाता है तथा उस परमात्माके साथ एक हो जाता है। वह ज्ञानी भक्त सबके शासक, ब्रह्माके भी आदि कारण, सम्पूर्ण जगत्के रचयिता, दिव्य प्रकाशस्वरूप, परम पुरुषको प्राप्तकर अपने समस्त पुण्य-पापरूप कर्मोंका नाश करके विशुद्ध-अन्तःकरण होकर समता भावमें स्थित हो जाता है।

परमात्माको प्राप्त करनेके साधनके बारेमें उपनिषद्में कहा गया है कि वह परमात्मा सत्य-भाषणसे, तपसे और ब्रह्मचर्यपूर्वक यथार्थ ज्ञानसे ही सदा प्राप्त होनेवाला है। भोगोंमें आसक्त, मिथ्याभाषी, स्वार्थपरायण, अविवेकी व्यक्ति उस परमात्माका अनुभव नहीं कर सकते। वह परमात्मा महान्, दिव्य और अचिन्त्यस्वरूप है तथा सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर भी है। वह सर्वव्यापी होनेसे दूर भी है तथा हमारी हृदय-गुफामें रहनेके कारण निकट-से-निकट भी है। वह नेत्रोंसे, वाणीसे या अन्य इन्द्रियोंसे

ग्रहण नहीं किया जा सकता, बल्कि उसे तो शुद्ध अन्त:करणमें ही निरन्तर ध्यान करते-करते देखा जा सकता है। भोगोंकी कामनावाला सकामी व्यक्ति विभिन्न प्रकारके भोगोंको प्राप्त करता है तथा भोगोंसे अनासक्त व्यक्ति परमात्माको प्राप्त करता है। परब्रह्म परमात्मा प्रवचनसे, बुद्धिसे, बहुत सुननेसे नहीं प्राप्त होता है बल्कि मुमुक्षु व्यक्तिको, उसके लिये तीव्र अभिलाषा करनेवाले साधकको प्राप्त होता है; क्योंकि परमात्मा उन्हींको स्वीकार करके उनपर कृपादृष्टि डालता है। निर्बल, प्रमादी एवं असंयमी व्यक्ति परमात्माकी प्राप्तिके अधिकारी नहीं हो सकते। वह तो सतत साधनपरायण साधकद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

उपनिषद् परमात्माको प्राप्त महापुरुषोंके महत्त्वका वर्णन करते हुए कहता है कि ऐसे ज्ञानी लोग परमात्माको साक्षात् करके ज्ञानसे तृप्त एवं परम शान्त हो जाते हैं तथा उस सर्वव्यापी परमात्मामें प्रवेश कर जाते हैं। ऐसे प्रयत्नशील शुद्ध अन्त:करणवाले साधक मरणकालमें शरीर त्यागकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं तथा वहाँ परम अमृतस्वरूप होकर सर्वथा मुक्त हो जाते हैं। ऐसी जीवात्मा अपने जड़ स्वरूपको त्यागकर समस्त कर्मोंसहित अविनाशी परब्रह्ममें लीन हो जाती है। जिस प्रकार बहती हुई नदियाँ अपने नाम-रूपको छोड़कर समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, वैसे ही ऐसा ज्ञानी महापुरुष नाम-रूपसे रहित होकर उत्तम-से-उत्तम दिव्य परम पुरुष परमात्मामें विलीन हो जाता है।

उपनिषद् अन्ततः इस सत्यका निरूपण करता है कि ब्रह्मको जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है, उसके कुलमें ब्रह्मको नहीं जाननेवाला नहीं होता, वह शोकसे तर जाता है, पाप-समुदायसे तर जाता है तथा सब प्रकारसे संशयरहित होकर जन्म-मृत्युरहित हो जाता है। इस प्रकार उपनिषद् हमें पूर्ण एवं सार्थक जीवनका सन्देश देता है।

आजके सत्संग

(श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र'जी)

कहाँ चले?

'सत्संग सुनने जा रहे हैं।'

'वहाँ क्या होगा?'

'एक छोकरी है। बड़ा सुन्दर गला है। खूब भजन गाती है।'

छोकरी न सही, कोई गायक, कथावाचक, वक्ता भजनीक सही।

पहली बात—सत्संग सुननेकी वस्तु नहीं है, करनेकी वस्तु है, दूसरी बात—आप वक्ताके रूप, स्वर, लच्छेदार भाषा, कथा-कहानी आदिसे आकर्षित हैं, अर्थात् मनोरंजन करने जाते हैं या सचमुच परमार्थको; भगवान्‌की, सत्य-सदाचारकी चर्चा सुनना आपको पसन्द है। इसकी आलोचना नहीं कर रहा हूँ।

आजके कथा-कीर्तन, सत्संगमें कैसी भीड़ होती है, यह आप भी जानते हैं।

तीसरी बात—आप सत्संगमें जाकर करते क्या हैं? माताएँ स्वेटर बुनती हैं। कहीं-कहीं सब्जी भी अमनिया करती हैं। कुछ श्रोता सोते हैं, कुछ सजावट देखते हैं, कुछ वक्ता या इधर-उधर बैठे लोगोंमें ताक-झाँक करते हैं।

केवल सुनने—एकाग्र होकर सुनने कितने जाते हैं? जो सुनने जाते हैं, केवल वही श्रोता हैं। भीड़ कब और क्यों अधिक होती है, यह आप भी जानते हैं।

चौथी और अन्तिम बात—सुनकर उठनेपर क्या होता है? लोग वक्ताकी प्रशंसा करते हैं। उनके प्रवचनकी युक्ति-प्रयुक्तिकी, स्वर-गानकी प्रशंसा करते हैं या उनके दोषोंका वर्णन करते हैं।

दोनोंमें कोई बात हो, सत्संग नहीं हुआ। सत्संग

न निन्दाको प्रेरित करता है, न स्तुतिको; (जो निन्दा या स्तुतिको प्रेरित करे) वह सत्संग नहीं था। भले वह उत्तम कथा या श्रेष्ठतम प्रवचन है।

सच्चा सत्संग

सत्संग आप किसे कहते हैं? आप पूछेंगे।

सत्‌का अर्थ है परमात्मा और संगका अर्थ है आसक्ति। अतः सत्संगका अर्थ परमात्मामें आसक्ति।

तब भक्ति, प्रेम और सत्संगमें अन्तर क्या है?

यह प्रश्न स्वाभाविक है। यह स्मरण रखनेयोग्य है—

'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।' (नारदभक्तिसूत्र)

भगवान् और उनके भक्तमें—महापुरुषमें कोई भेद नहीं है। सत्संग शब्दका मुख्य अर्थ यही है—महापुरुषमें प्रेम। अब इसका दूसरा गौण अर्थ भी है। जैसे आम फल है, किंतु आम वृक्ष भी आम कहलाता है। जैसे भक्तिका अर्थ भगवान्‌में प्रीतिका होना है, किंतु उस प्रीतिको उत्पन्न करनेका साधन—श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दन, पादसेवनको भी भक्तिका साधन या साधन-भक्ति कहते हैं, वैसे ही महापुरुषमें या भगवान्‌में जो आसक्ति उत्पन्न करे, उस कथा, प्रवचन, भजन, कीर्तनको सुनने एवं ग्रन्थोंको पढ़ने-पढ़ाने, सुननेका नाम भी सत्संग है।

ऐसे सत्संगकी एक पहचान है—वह निन्दा या प्रशंसाकी प्रेरणा नहीं देता। वह श्रोताको मननकी प्रेरणा देता है। सोचनेके लिये गम्भीर बनाता है और उसके हृदयमें 'सत्' के प्रति आसक्ति जगाता है।

ऐसा सत्संग सबके लिये सत्संग नहीं होता। अपने इष्ट, अपनी निष्ठा, अपने साधनमें जो रुचि उत्पन्न करे, वह सत्संग होता है। एक भक्तके लिये वेदान्तके उच्चकोटिके महापुरुषका संग भी कुसंग बन सकता है और एक वेदान्तके साधकके लिये किसी भगवत्प्राप्त भक्तका संग भी कुसंग बन सकता है।

संग अर्थात् आसक्ति, सत् अर्थात् श्रद्धा और यह श्रद्धा तथा आसक्ति करती क्या है? भगवान्‌ने गीतामें बतलाया—

'यो यच्छ्रद्धः स एव सः।'

जो जिसमें श्रद्धा करता है, वह वही है। उसीसे अब उसका तादात्म्य है और आगे भी उसीमें उसे मिलना है।

आपकी श्रद्धा कहाँ है? इसका उत्तर देनेसे पहले सोचिये कि आपको बनना क्या है? किसे पाना चाहते हैं आप?

आपको निर्गुण निराकार अद्वय परमात्मबोध पाना है तो आपको अयोध्या-वृन्दावनके रसिक सन्तोंमें आसक्ति करनेसे, उनकी बातें सुननेसे क्या मिलेगा? आपके लिये सच्चा सत्संग है, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, पंचदशी, अद्वैतसिद्धि आदिका अध्ययन और किसी विरक्त वेदान्तनिष्ठमें दृढ़ श्रद्धा।

आपको श्रीराम या श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रीति चाहिये तो आप ऊपर बतलाये ग्रन्थों तथा वैसे संतके पास जाकर समय नष्ट क्यों करते हैं? आपको किसी भगवद्भक्त सन्तमें श्रद्धा करनी चाहिये और श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस-जैसे ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

परम सत्य है यह, किंतु यह महापुरुषकी सिद्ध स्थिति है। साधन-पथके पथिकके लिये तो सच्चा सत्संग चाहिये। अर्थात् अपने साधनके अनुकूल महापुरुषमें उसकी दृढ़ आस्था-श्रद्धा और सचमुच आसक्ति होनी चाहिये। यह है उसका सच्चा सत्संग। **[श्रीकृष्णसन्देश]**

[प्रेषक—श्रीजनार्दनजी पाण्डेय]

जन्मान्तरीय पुण्यकर्मोंसे सत्संगकी प्राप्ति

भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्सङ्गमेव लभते पुरुषो यदा वै।
अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः॥

बहुत जन्मके पुण्य-पुञ्जसे भाग्योदय होनेपर जब पुरुषको सत्संगकी प्राप्ति होती है, तभी अज्ञानकृत मोह और मदरूपी अन्धकारका नाश करके विवेकका उदय होता है। **[पद्मपुराण]**

कहानी—

उतार-चढ़ाव

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

उन्नीसवीं सदीके अन्तिम चरणकी बात है, कराचीके एक मध्यवर्गीय सिन्धी परिवारमें हरनाम नामका एक बालक था। माँ बचपनमें ही मर चुकी थी। बापने प्रौढ़ावस्थामें फिरसे एक गरीब घरकी लड़कीसे विवाह कर लिया। उसके दो सौतेले बहन-भाई भी हो गये थे।

हरनामकी शादी-शुदा अपनी एक बड़ी बहन थी, परंतु उसे कभी त्यौहारपर भी पीहर नहीं बुलाया जाता था। कभी-कभी छुपकर वह भाईकी पाठशालामें आती और कुछ चीजें दे जाती। घरमें छोटे भाई-बहनके लिये विशेष अवसरोंपर नये कपड़े और तरह-तरहकी मिठाइयाँ बनतीं, परंतु हरनामको कोई भी नहीं पूछता। बेचारा बालक ललचाई आँखोंसे देखता रहता। कभी-कदाच वे दोनों इसे कुछ देना चाहते तो माँ उन्हें मना कर देती।

एक दिन किसी साधारणसे कसूरपर विमाताने हरनामको बहुत पीटा। पिता भी पत्नीके डरसे कुछ नहीं बोला। भूखा-प्यासा बच्चा घरसे भागकर समुद्र-किनारे
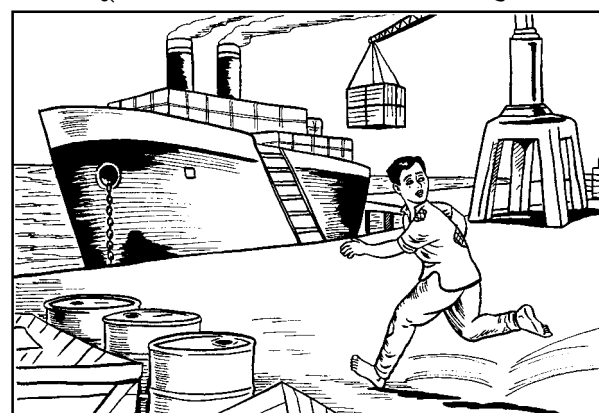
खड़े किसी भारवाही जहाजमें जाकर छिप गया।

थोड़ी देर बाद, जब जहाज रवाना हुआ तो उसे वस्तुस्थितिका भान हुआ और वह सुबक-सुबककर रोने लगा। परशियन ऑयल कम्पनीका जहाज था। ज्यादातर मल्लाह अरबके थे, दो-चार ऑफिसर भी थे। जब उन्होंने १२-१३ वर्षके एक अति सुन्दर बालकको इस स्थितिमें देखा तो आश्चर्यचकित रह गये। धीरे-धीरे सारी बातोंकी जानकारी ली। जहाजका कराची वापस जाना सम्भव नहीं था। बालकपर कप्तानका स्नेह हो गया। उसने उसे अपनी केबिनमें रखा लिया। ईरान पहुँचकर कप्तानने उसे एक धनी ईरानी परिवारमें नौकर रखवा दिया। हरनामकी बुद्धि कुशाग्र थी। थोड़े दिनोंमें ही उसे अरबी, फारसी और अँगरेजी बोलनेका अच्छा अभ्यास हो गया।

उन दिनों, ईरानमें तेल कम्पनीके बहुत-से अँगरेज अधिकारी थे। परशियन ऑयल कम्पनीका बड़ा साहब वहाँ ब्रिटेनकी तरफसे सर्वोच्च राजदूत भी था। एक दिन साहब और उसकी पत्नी टहलते हुए किसी अरबी शब्दके बारेमें बहस कर रहे थे। हरनाम उधरसे गुजर रहा था। उसने क्षमा माँगते हुए विनयपूर्वक कहा कि मेम साहिबाका जुमला सही है।

अब तो हरनामपर उन दोनोंकी पूर्ण कृपा हो गयी। उसे उन्हींके बँगलेमें रहने, खानेकी सुविधा मिल गयी। हाथ-खर्चके लिये दो सौ रुपया महीना दिया जाने लगा। काम था, मेम साहिबाको अरबी और फारसी पढ़ाना।

प्रथम महायुद्धमें ईरान मध्य-पूर्वका सप्लाई-केन्द्र बना। करोड़ों रुपये महीनेका सामान वहाँसे वितरण होने लगा। तेल कम्पनीका बड़ा साहब निदेशक नियुक्त हुआ। अधिकांश सामानके वितरणका काम मिला हरनामदास एण्ड कम्पनीको। सन् १९१८ ई० तक हरनामदास करोड़पति सेठ बन गया। वहीं चार-छः मुताह (कंट्रॉक्ट मैरिज या अल्पकालीन विवाह) कर लिये। इन बीबियोंके अलावा उसके रंगमहलमें एक-से-एक सुन्दरी दासियाँ थीं। सैकड़ों नौकर-चाकर, मुनीम-गुमाश्ते घर और ऑफिसका काम देखते, उसके दरवाजेपर अनेक अतिथि और प्रतिनिधि आते रहते, सबका यथायोग्य आदर-सत्कार होता।

संयोगसे, एक दिन एक भारतीय साधु घूमता हुआ वहाँ जा पहुँचा। स्वदेशके संन्यासीकी दूसरेकी अपेक्षा

अधिक खातिरदारी होनी स्वाभाविक ही थी। एक महीनेतक किसी राजा-महाराजाका-सा आयोजन उनके लिये हुआ। विदाईकी दक्षिणामें कीमती शाल-दुशाले तथा अच्छी रकम नकद दी गयी।

पन्द्रह वर्षके लम्बे समयके बाद, एक साधु महाराज हरिद्वारके पास मुनिकी रेतीमें एक बड़े-पकौड़ीकी दूकानपर खड़े होकर दूकानदारको बड़े ध्यानसे देख रहे थे। महाराजको प्रेमसे नाश्तेका निमन्त्रण मिला। पहलेसे ही चार-पाँच संन्यासी प्रसाद पा रहे थे। दूकानपर ग्राहकोंकी अच्छी भीड़ थी।

दूकानदारने पूछा—'महाराज! आप इतने ध्यानसे मुझे क्यों देख रहे थे?'

संन्यासीने पन्द्रह वर्षों पहलेके ईरान-प्रवासकी अपनी कहानी सुनाकर कहा कि सेठ हरनामदासका चेहरा आपसे एकदम मिलता-जुलता है।

जब उन्हें पता चला कि वे उस हरनामदाससे ही बातें कर रहे हैं तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा।

जो कहानी उन्हें सुनायी गयी, वह इस प्रकार थी—

आपके चले जानेके एक वर्ष बाद बड़े साहबका तबादला हो गया और छोटे साहबने काम सँभाला। मैंने कभी उसकी परवाह नहीं की थी, इसलिये वह और उसके मुँहलगे दोस्त एवं कर्मचारी मुझसे जलते रहते थे। कुछ ही दिनों बाद मुझपर जालसाजीका मुकदमा चलाया गया, जिसकी सजा होती मौत।

जल्दीसे व्यवस्था करके, मुनीमोंको काम सँभलाकर मैं चार-पाँच लाखकी सम्पत्ति लेकर, अपने सचिवके साथ ईरानसे छद्मवेशमें रवाना हुआ। रास्तेमें मेरा सचिव सन्दूक लेकर न जाने कहाँ उतर गया। मैं जब बम्बई बन्दरगाह पहुँचा तो मेरे पास थोड़े-से रुपये और एक बहुमूल्य हाथ-घड़ी बची थी।

घड़ी बेचनेके लिये दो-तीन दूकानोंमें गया। दूकानदार मेरी मैली वेश-भूषा और बढ़ी हुई दाढ़ी देखकर सन्देह करने लगे कि शायद मैं घड़ी चुराकर लाया हूँ। केवल पचास-साठ रुपयेतक देनेको तैयार हुए। मैंने क्रोधमें आकर घड़ीको समुद्रमें फेंक दिया।

जगह-जगह मजदूरी करता हुआ, संयोगसे यहाँ आकर बड़े-पकौड़ीकी यह दूकान कर ली। थोड़े दिनोंतक तो मनमें संताप रहा, फिर एक दिन एक महात्मा आये। उनका उपदेश था, 'बच्चा! धन और मानमें सच्चा सुख नहीं है। ईश्वरके बन्दोंकी सेवा करो, शान्ति मिलेगी।' तबसे महात्माओंको प्रसाद देकर जो बच जाता है, उसीसे दो जूनकी खुराक आरामसे मिल जाती है। सुबह ६ बजेसे लेकर रातके १२ बजेतक मेहनत करनेसे शरीर स्वस्थ रहता है और मन भी नाना चिन्ताओंसे मुक्त है। भगवती गंगाका तट है और साधु-महात्माओंका संग-लाभ; सचमुच, बहुत आनन्दमें हूँ।

संन्यासीने प्रसाद पाकर हरनामदासको प्रणाम किया और कहा कि वास्तवमें ही आप सुख-दु:खके समदर्शी-समभोगी हैं।

सन् १९६१ ई० में हरनामदासकी मृत्यु हुई। मेरे मित्र स्वर्गीय श्रीराम शर्मा (सम्पादक, विशाल भारत)-के घरपर एक-दो बार उनसे मुलाकात हुई थी। गरीबी होनेपर भी आदतें पहले-जैसी ही थीं। एक-दो कम्बल या कोट पासमें होता तो वे किसी जरूरतमन्दको दे देते। कई दिनोंतक कड़ाकेकी सर्दी भुगतनेके बाद सम्भव होता तो फिर कोट बनवा पाते, परन्तु कभी उनके चेहरेपर दीनताके भाव नहीं दिखायी दिये।

[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]

लक्ष्मी गुणवान्‌के पास जाती हैं

श्रियः कुर्यात् पलायिन्या बन्धाय गुणसंग्रहम्। दैत्यांस्त्यक्त्वा श्रिता देवा निर्गुणान्सगुणाः श्रिया॥

चंचल लक्ष्मीको बाँधनेके लिये गुणोंका संग्रह करना चाहिये। गुणहीन हो जानेके कारण दैत्योंको छोड़कर लक्ष्मी गुणवान् देवताओंके पास चली गयीं। [**क्षेमेन्द्र**]

गंगावतरण

(डॉ० श्रीकमलाकान्तजी शर्मा 'कमल', एम०ए०, पी-एच० डी०)

अच्युतचरणतरङ्गिणि शशिशेखरमौलिमालतीमाले।
मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता॥

हे विष्णुपादनन्दिनि! हे गंगाधर श्रीशंकर महादेवके शिरकी मालती-माला माता गंगे! आप जिस समय मुझे स्नानके फलको प्रदान करें; उस समय मुझे महादेव बनाना, भगवान् विष्णु नहीं; क्योंकि विष्णु बननेपर आपका निवास पैरोंमें रहेगा, जो मुझे कृतघ्नभाववश स्वीकार नहीं और शंकर बननेसे आप मेरे सिर (माथे)-पर विराजेंगी, परिणामतः मैं आपके प्रति कृतज्ञ हो सकूँगा।

शस्यश्यामल भारतवर्ष, अनेकतामें एकताका उद्घोष करनेवाला धर्मप्राण देश, न केवल व्यक्ति अपितु समष्टिके कल्याणका आकांक्षी भारत देश अपनी विशिष्टताओंके आधारपर आजसे नहीं, धुर पुरातन कालसे समूचे भूमण्डलपर जाना जाता रहा है। भौगोलिक दृष्टिसे भी उस परब्रह्म ठाकुरने बहुत उदारताके साथ इस देशको सँवारा-सजाया है। हिमगिरि नगराज हिमालय इसके माथेपर मुकुटकी भाँति शोभित है तो इसके चरण-प्रक्षालनहेतु रत्नाकर सागर अहर्निश सेवारत है। जिसकी चारों दिशाओंमें श्रीहरि (विष्णु) और श्रीहर (महादेव) क्रमशः जगन्नाथपुरी, द्वारका, केदार और रामेश्वरम्‌के रूपमें स्वयं विराजते हैं तो कल-कल करती पावन शीतलसलिला सरिताएँ इस देशके सम्पूर्ण आन्तरिक परिवेशका पोषण करती हुई नित नूतन ऊर्जा और क्षमता प्रदान करती हैं। जिस देशमें वनस्पतिमें भी भगवद्दर्शनकी अद्भुत भावधारा विद्यमान हो, उस धरापर सुशोभित वनाच्छादित पर्वत-पठार, घाटियाँ, स्वर्णकणोंकी भाँति चमकता मरुप्रदेश, वन-अरण्य, अनेकविध पशु-पक्षी, खनिज सम्पदासे परिपूर्ण रत्नगर्भा वसुन्धरा तथा समूचे विश्वके प्रति कल्याणकारी भावनाओंसे भावित अनुप्राणित जन समुदाय—सचमुच यह देश विशिष्ट है, अभिनन्दनीय है और प्रणम्य है, इसलिये कि इस देशकी धरतीके कण-कणमें शक्ति और भक्तिकी अप्रतिम कथाएँ साकार हुई हैं—ऐसे महनीय देशकी विशेषताओंको कुछ शब्दोंमें बाँध लेना सहज सम्भव नहीं होता।

और-तो-और जिस भूतलपर स्वयं जगदीश्वर, एक नहीं अनेक बार विभिन्न अवतारोंके माध्यमसे स्वधाम (वैकुण्ठ)-को छोड़कर पदार्पण करता रहा है, उस देशकी पावन धराका गुणगान क्या इतना सहज है? गंगा, यमुना, कावेरी, कृष्णा, गोमती, गोदावरी, गण्डक, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा-जैसी नित्यनीरा नदियाँ अपनी वन्दनीय उपस्थितिसे जिस देशको धन-धान्य-सम्पदासे परिपूरित करती रहती हैं, उस देशकी महिमापूर्ण गौरव-गाथाको वर्णित-विश्लेषित करना वस्तुतः सहज और सरल नहीं; क्योंकि अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक श्रीहरिने कृष्णावतारके समय महाभारतके रणांगणमें गीताका उपदेश करते हुए गाण्डीवधारी अर्जुनको अपनी सार्वभौमिक और शाश्वत उपस्थितिका संकेत करते हुए स्वयं अपनी सत्ता (विद्यमान स्थिति)-को इस देशके सन्दर्भमें अनेकविध रेखांकित किया है—

पवनः पवतामस्मि रामः शस्त्रभृतामहम्।
झषाणां मकरश्चास्मि स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी॥

(गीता १०। ३१)

गंगामें अपनी ही विद्यमानता सिद्ध करते हुए श्रीहरिने '**स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी**' कहकर पतितपावनी गंगाकी महत्ताको महती ऊँचाई प्रदान की है।

पुराणोंके अनुसार गंगा एक पुण्यसलिला सरिताका नाम है, जहाँ गंगाको एक भगवती देवीके रूपमें वर्णित किया गया है। विष्णुपदी, मन्दाकिनी, सुरसरि, देवगंगा, जाह्नवी एवं हरिनदी गंगाके ही पर्यायवाची नाम हैं। वेदोंमें भी गंगाका उल्लेख मिलता है।

यत्र गङ्गा च यमुना च यत्र प्राची सरस्वती।
यत्र सोमेश्वरो देवस्तत्र माममृतं कृधि॥

जहाँपर गंगा, यमुना एवं प्राची दिशावाहिनी सरस्वती तथा सोमनाथ महादेवजी हैं, उस स्थानमें मुझको सदा वासद्वारा मरण—मुक्ति प्रदान कीजिये और भी कहा गया है कि '**सितासिते सरिते**' [श्वेत एवं कृष्णवर्णा गंगा यमुना]-का '**यत्र सङ्गथे**' [जहाँ संगम] होता है, वहाँपर जो लोग '**आप्लुतासो**' [स्नान] करते हैं, वे '**दिवमुत्पतन्ति**' अर्थात् इस लोकसे ऊर्ध्व (स्वर्ग) लोकको प्राप्त होते हैं।

गंगाकी उत्पत्ति एवं स्थितिविषयक दो कथाएँ विशेष रूपसे प्रचलित है—

प्रथम—गंगाकी उत्पत्ति श्रीहरि (विष्णु)-के चरणोंसे हुई है, एक मान्यताके अनुसार ब्रह्माने इसे अपने कमण्डलुमें एकत्रित कर लिया, कहा जाता है कि वामनावतारके समय भगवान्ने जब विराट्रूप धारण किया तो उनके ब्रह्माण्डको भेदते ऊपर उठे चरणका प्रक्षालनकर ब्रह्माने उस जलको अपने कमण्डलुमें रख लिया। एक अवान्तर व्याख्यानुसार सम्पूर्ण आकाशमें स्थित मेघका ही पौराणिक 'विष्णु' अर्थ करते हैं, मेघसे वृष्टि होती है और उसीसे गंगाकी उत्पत्ति मानी गयी है।

द्वितीय—गंगाका जन्म हिमालयकी आत्मजाके रूपमें मैनाके गर्भसे हुआ था, किसी कारण-विशेषसे गंगा ब्रह्माके कमण्डलुमें अवस्थित हो गयीं। देवीभागवतके अनुसार लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा—तीनों नारायणकी पत्नियाँ है। पारस्परिक कलह और वैमनस्यवश उन्होंने एक-दूसरेको शाप देकर नदीरूपमें अवतरित होकर भूलोकमें निवास करनेहेतु बाध्य कर दिया था।

यही कथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें भी प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी, सरस्वती एवं गंगा—ये तीनों विष्णु भगवान्की पत्नियाँ हैं, इनके पारस्परिक कलहसे सरस्वतीके शापसे लक्ष्मी पद्मावती नामक नदी एवं तुलसी नामक पादपरूपमें अवतीर्ण हुई, गंगाके शापसे सरस्वती भी नदीरूपमें धरापर अवतीर्ण हुई तथा सरस्वतीके शापवश गंगा भी नदीरूपेण अवतरित हुई।

पुराणोक्त कथनानुसार गंगा महाराज शान्तनुकी पत्नी एवं भीष्मकी माता भी कही गयी हैं।

पृथ्वीपर गंगावतरणकी कथा इस प्रकार है—महर्षि कपिलमुनिके शापवश महाराज सगरके साठ हजार पुत्र भस्मीभूत हो गये थे, अपने पूर्वजोंके मोक्षहेतु उनके वंशजोंने गंगाको पृथ्वीतलपर लानेके निमित्त घोर तपस्या की, अन्तत: महाराज भगीरथकी तपस्यासे भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न हुए, उन्होंने गंगाको पृथ्वीपर ले जानेकी आज्ञा प्रदान की, किंतु ब्रह्मलोकसे अवतरित होनेवाली गंगाके विकट प्रवहमान वेगको सहन करनेमें पृथ्वी सर्वथा असमर्थ थी, अत: भगीरथने भगवान् शिवकी आराधना करके गंगाके प्रवाहपूर्ण अवतरणको अपनी जटाओंमें धारण करनेकी प्रार्थना की, इस प्रकार ब्रह्माके कमण्डलुसे निकलकर गंगा शिवकी जटाओंमें रम गयीं। बादमें जह्नु ऋषिके यज्ञकी सामग्री गंगाके प्रवाहवश नष्ट हो जानेके परिणामस्वरूप ऋषि गंगाका पान कर गये और गंगा जह्नु ऋषिके उदरस्थ हो गयीं। महाराज भगीरथकी अनुनय-विनयपूर्ण प्रार्थनासे ऋषि द्रवित हो गये और गंगाको पुन: अपनी जंघासे प्रवाहित किया और तभीसे गंगा जाह्नवीके नामसे भी जानी जाने लगीं। आगे-आगे चलते हुए महाराज भगीरथ गंगाको अपने पूर्वजोंके भस्मीभूत देह-स्थानतक ले गये और पूर्वजोंको मुक्ति दिलायी। भगीरथकी अथक-अकथनीय तपस्यासे गंगाका पृथ्वीपर अवतरण हुआ, इसीलिये गंगा भागीरथीके नामसे भी जानी जाने लगीं।

भगवती गंगाका भूतलपर आविर्भाव—ब्रह्मपुराणान्तर्गत ब्रह्मा और महर्षि नारदके संवादमें तथा स्कन्दपुराणमें भगवान् शंकर तथा स्कन्दके संवाद-सन्दर्भमें भगवान् श्रीहरिके त्रिविक्रमावतार (वामनावतार)-के समय ब्रह्माजीने अपने कमण्डलुके जलसे परमात्माके चरण-कमलोंमें सादर अर्घ्य प्रदान किया था, वही जल मेरुपर्वतपर गिरकर चारों ओर प्रवाहित हुआ, उसमेंसे जो जल दक्षिण दिशाकी ओर गिरा, उसको भगवान् शंकरने अपनी जटाओंमें क्रमश: वाम एवं दक्षिण दो भागोंमें विभक्तकर स्थापित कर लिया, उसी जलका

एक भाग जो कि दक्षिण अंशमें स्थित था, वह गौतमजीने तपश्चर्याकर भगवान् महादेवसे प्राप्त किया तथा जो अंश उत्तरकी ओर था, वह महाराज भगीरथने तपश्चर्याकर भगवान् आशुतोषसे प्राप्त किया। फलतः पहलेका नाम गौतमी गंगा एवं गोदावरी है तथा दूसरेका नाम भागीरथी गंगा और जाह्नवी है। साथ ही जो जल ब्रह्माजीके कमण्डलुमें था, वह भी पार्वतीके साथ विवाहके समय महादेवने अभिमन्त्रितकर कमण्डलुमें रखकर ब्रह्माजीको प्रदान किया था एवं भगवान् शिवके संगीतको सुनकर द्रवीभूत श्रीराधाकृष्णरूप जो जल था, उसे भी ब्रह्माजीने अपने कमण्डलुमें सन्धारित कर लिया—इसीसे गंगाजीका एक नाम 'ब्रह्मद्रव' भी कहा गया है। इस प्रकार गंगाजलमें तीनों देवताओं [ब्रह्मा, विष्णु और महेश]-का सम्बन्ध होनेसे इसको 'त्रिदेवत्व' नामसे भी जाना गया है और यह अतिपावन, सर्वजन-कल्याणकारी गंगोदक सर्वोत्तम एवं सर्वसेवनीय कहा गया है।

आजकल गंगाको लेकर बहुत हलचल है। गंगाकी शुद्धि, गंगाकी मौलिकताकी रक्षा, नमामि गंगे-जैसी योजनाओंकी गूँज, गंगामें अनेक प्रकारके अपशिष्ट पदार्थोंकी रोकथामहेतु करोड़ों रुपयोंकी योजनाएँ, कुल मिलाकर गंगाके विषयको लेकर प्रायः आन्दोलनोंकी चर्चा सुनायी देने लगी है, केन्द्रीय सरकारने तो एतदर्थ पृथक्से पूरा विभाग और मन्त्रीतककी नियुक्ति की है, प्रश्न यह है कि वस्तुतः पुण्यसलिला देवसरिता गंगा क्या अपने 'अभंग, तरंगशील प्रवहमान स्वरूपद्वारा दर्शन, पान, स्नान-स्तवनशीलजनोंके पापपुंजका उन्मूलनकर उन्हें पुण्यभाजन करेगी या यह भी अन्य आस्थावान् धर्मस्थानोंकी भाँति अपनी पापमोचिनी क्षमता, सामर्थ्य, शक्ति और नैसर्गिकताको त्यागकर लाखों-करोड़ों मनुष्योंको आहत दुःखित करेगी।'

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्टा भद्रं प्रयच्छति।
अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम्॥

(महाभारत, वनपर्व ८५।९३)

कीर्तित गंगा पाप दूरकर पवित्र करती है और दर्शित गंगा मंगल प्रदान करती है, जबकि स्नान एवं पान करनेसे गंगा सात कुलपर्यन्त मनुष्योंको पवित्र करती है।

स्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्डके अनुसार एवं महाभारतान्तर्गत वनपर्व ८५वें अध्यायके ९०वें श्लोकमें वर्णित—

सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम्।
द्वापरेऽपि कुरुक्षेत्रं गङ्गा कलियुगे स्मृता॥

—के अनुसार सत्ययुगमें सभी पुण्यजनक एवं त्रेतामें विशेषतः पुष्कर तथा द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलिकालमें विशेषतः गंगाजीको पुण्यजनक कहकर भगवती गंगाके वैशिष्ट्यको प्रतिपादित किया गया है।

पृथ्वीपर भगवती गंगाका नित्य निवास है—

यावद् धरण्यां तुलसी प्रपूज्यते
गुरुर्नभस्थो दिवि कल्पपादपः।
यावत्समुद्रे बडवानलश्च
वसामि तावत् तव चक्रखाते॥

स्वयं भगवती गंगा स्वमुखसे भगीरथ महाराजको आज्ञा प्रदान करती हैं—हे भगीरथ! जबतक पृथ्वीपर तुलसीका पूजन, आकाशमें गुरु, स्वर्गमें कल्पवृक्षकी स्थिति रहेगी तथा समुद्रमें बड़वाग्निकी स्थिति रहेगी, तबतक मैं (गंगा) तुम्हारे चक्रखातमें निवास करूँगी।

अन्तमें गंगाके मूल्य एवं महत्त्वको विश्लेषित करना तो सरल और सहज नहीं होगा, तथापि इतना कथन ही समुचित होगा कि—

न गङ्गासदृशं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
ब्राह्मणेभ्यः परं नास्ति एवमाह पितामहः॥

(महाभारत, तीर्थयात्रापर्व ८५।९६)

गंगाके समान कोई तीर्थ नहीं, केशवके समान कोई श्रेष्ठ देव नहीं, ब्राह्मणोंके समान कोई श्रेष्ठ मनुष्य नहीं। इस प्रकार गंगा अद्भुत हैं, अनिर्वचनीय आनन्द एवं मंगलप्रदायिनी हैं तथा वर्णनातीत पावन धारा सरिता हैं।

संतकी दुर्लभता और महत्ता

(श्रीभँवरलालजी परिहार)

भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १५-१६)

हे उद्धव! मुझे तुम्हारे-जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम हैं, उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा, आत्मा शंकर, सगे भाई बलरामजी, स्वयं अर्धांगिनी लक्ष्मीजी और मेरा अपना आत्मा भी नहीं है। जिसे किसीकी भी अपेक्षा नहीं, जो जगत्के चिन्तनसे सर्वथा उपरत होकर मेरे ही मनन-चिन्तनमें तल्लीन रहता है और राग-द्वेष न रखकर सबके प्रति समान दृष्टि रखता है, उस महात्माके पीछे-पीछे मैं निरन्तर यह सोचकर घूमा करता हूँ कि उसके चरणोंकी धूल उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और मैं पवित्र हो जाऊँ।
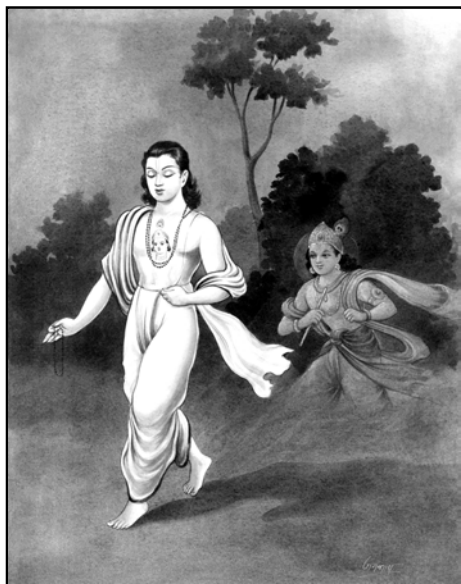
भगवान्के प्यारे संत-भक्तकी महिमा समझनेके लिये भगवान्के उपर्युक्त वचन पर्याप्त हैं। इससे अधिक कोई कुछ कह भी नहीं सकता और लिखनेकी शक्ति तो किसी भी लेखनीमें है ही नहीं, तथापि भगवान्के ऐसे प्यारे भक्तों-सन्तोंके स्मरणसे हमारे मन-बुद्धि पवित्र हो जाते हैं, इस दृष्टिसे यत्किंचित् लिखनेका प्रयास किया जाता है।

सम्पूर्ण भूमण्डलके मनुष्योंको चार श्रेणियोंमें विभाजित किया जा सकता है—१. संत, २. साधक, ३. विषयी तथा ४. पामर। संतका तात्पर्य है भगवत्साक्षात्कारसे सम्पन्न भगवान्का अनन्य प्रेमी भक्त। साधक वह है, जो भगवत्प्राप्तिके लिये साधनामें संलग्न है। संसारके भोगोंमें फँसे हुए और विषय-भोगप्राप्तिको ही अपने जीवनका उद्देश्य समझनेवाले लोग विषयी हैं। पामरकी गणना अत्यन्त निकृष्ट मनुष्योंमें की जाती है, जो विषय-भोगोंकी प्राप्तिके लिये किसी भी पाप-कर्मको करनेमें हिचकिचाते नहीं हैं।

यह बड़ी ही विलक्षण बात है कि भगवान्ने स्वयंको सुलभ बताया है—‘**तस्याहं सुलभः पार्थ**’ (गीता ८। १४); किंतु अपने भक्तको दुर्लभ ही नहीं, बल्कि सुदुर्लभ बताया है—‘**स महात्मा सुदुर्लभः**’ (गीता ७। १९)। भगवान्को तत्त्वसे जाननेवाला महापुरुष कोई बिरला ही होता है, यह बात स्वयं भगवान्ने कही है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७। ३)

हजारों मनुष्योंमें कोई एक ही मनुष्य मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक ही पुरुष मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थ रूपसे जानता है।

देवर्षि नारदने भी कहा है कि ऐसे संत-महापुरुषोंका संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है—‘**महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।**’ (भक्तिसूत्र ३९)

संत-महात्माओंका मिलना बहुत ही दुर्लभ है। यदि कहीं ऐसे संत मिल भी जायँ तो उनको पहचानना बहुत

कठिन है; परंतु यदि भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे ऐसे संत मिल जाते हैं *'बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता।'* तो उनका मिलना कभी व्यर्थ नहीं जाता; क्योंकि वह अमोघ होता है।

संतनामधारी पुरुष तो बहुत मिल जायेंगे, किंतु सच्चे संत सभी युगों-कालोंमें दुर्लभ होते हैं। आजके इस दाम्भिक युगमें जहाँ स्वयंको संत, राष्ट्रसंत और विश्वसंत प्रदर्शित-घोषित करनेकी होड़ लगी हुई है, वहाँ प्रतिक्षण-वर्द्धमान, परमलोभनीय, परमदुर्लभ भगवत्प्रेमसे आप्लावित सच्चे संत-भक्तको पहचानना तो और भी कठिन है। कोई पारखी, पैनी नजर ही उस हीरेको पहचान सकती है—

हीरा पड़ा बाजार में रही छार लिपटाय।
बहुतक मूरख चले गये पारख लियो उठाय॥

सांसारिक लोगोंकी बुद्धिके तराजूपर सच्चे संत वैसे ही नहीं तुल सकते, जैसे पत्थर तोलनेके तराजूपर हीरा नहीं तुल सकता।

'संतत्व' क्या है? यह संसारकी सम्पूर्ण आसक्ति-ममता-कामनासे परिमुक्त एक परम विशुद्ध व्यक्तित्वका वाचक है, जिसकी दृष्टिमें एक भगवान्‌के अतिरिक्त अन्य किसीका कोई अस्तित्व नहीं है—*'जित देखौं तित स्याममई है।'* क्लेशकी आत्यन्तिक निवृत्ति होनेपर ही संतत्वकी प्राप्ति होती है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश—ये पाँच क्लेश हैं (योगदर्शन २।३)। इन क्लेशोंकी निवृत्ति हुई है या नहीं—यह स्वयंवेद्य है, इसको कोई दूसरा नहीं जान सकता है। यद्यपि नाटकमें जिस प्रकार कोई अभिनेता चैतन्यमहाप्रभु, मीराबाई आदि सन्तोंका सफल अभिनय कर सकता है, वैसे ही वास्तविक जीवनमें भी कोई चालाक व्यक्ति स्वयंको संत बतानेमें सफल हो सकता है तथापि नकली एवं वास्तविकमें जमीन-आसमानका अन्तर होता है। संतके जीवनमें किसी चमत्कारकी खोज या अपेक्षा करनेवाले लोग संतत्वके बारेमें कुछ समझते-जानते ही नहीं हैं। चमत्कार एक तुच्छ वस्तु है; किंतु संतोंके जीवनमें भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे कभी-कभी ऐसी अनहोनी घटनाएँ भी होती रहती हैं। तुलसीदासजी महाराजके आशीर्वादसे मुर्देका जीवित हो जाना एवं मीराबाईके लिये विषका अमृत हो जाना प्रसिद्ध ही है, परंतु संतका वास्तविक चमत्कार है उसका दिव्य भगवत्प्रेम, भोगोंके प्रति उसकी तीव्र विरक्ति और दैवी-सम्पदा (गीता १६।१—३)-के गुणोंसे सुवासित उसका शास्त्रानुकूल आदर्श, अनुकरणीय जीवन। भगवान् अपने ऐसे भक्त-संतसे इतना अधिक प्रेम करते हैं कि वे अपने भक्तके अतिरिक्त किसी अन्यको पहचाननेसे भी इनकार कर देते हैं। दुर्वासा-अम्बरीष-उपाख्यानमें यह बात स्पष्ट हो चुकी है। भगवान्‌ने कहा है—

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

(श्रीमद्भा० ९।४।६८)

दुर्वासाजी! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी-भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमीभक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।

भगवान्‌ने स्पष्ट कहा है कि मैं सर्वथा अपने भक्तोंके अधीन हूँ, मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है—**'अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।'** (श्रीमद्भा० ९।४।६३) भगवान्‌के ऐसे प्यारे भक्तोंके लिये भगवत्कृपाके बलपर कुछ भी करना असम्भव नहीं है। श्रीहनुमान्‌जीद्वारा सोनेकी लंका जलाया जाना एवं उनके एक मुक्केसे त्रिलोकविजयी रावणके मूर्छित हो जानेकी

घटनाएँ इसकी साक्षी हैं।

संत स्वयं भगवन्मय होते हैं तथा समग्र चराचर जगत्को भगवन्मय देखते हैं। अपने सम्पूर्ण कर्मोंसे भगवान्की सेवा करना ही उनका जीवनव्रत होता है। सबमें भगवान्, सब रूपोंमें भगवान्—यही उनका मुख्य उपदेश होता है। ऐसे सन्तोंको 'सचल वृन्दावन' कहें तो भी कोई अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि उनके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारपर पूर्णरूपसे भगवान्का ही अधिकार हो जाता है। वहाँ निरन्तर भगवान्की नित्यलीला चलती रहती है। वृन्दावन क्या है? भगवान्की नित्य लीलास्थली। फिर ऐसे संत और वृन्दावनमें क्या अन्तर है?

आश्चर्यकी बात है कि संतका संतत्व स्वयं संतसे ही छिपा रह जाता है। किसीके कहने या घोषित करनेपर भी वे अपना संतत्व कभी भी स्वीकार नहीं करते। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा, कीर्ति, सुयशकी वासना उनको छूतक नहीं सकती। सर्वथा संगोपनप्रिय होनेके कारण उनको बाहरी लक्षणोंसे पहचाना नहीं जा सकता। सन्तोंके सभी लक्षण प्राय: स्वयंवेद्य होते हैं तथापि शास्त्रोंमें यत्र-तत्र उनका विपुलमात्रामें वर्णन हुआ है। भगवान्ने गीताके बारहवें अध्याय (श्लोक १३—१९)-में संत-भक्तोंके लक्षण विस्तारपूर्वक बताये हैं। इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें भी सन्तोंके लक्षणोंका वर्णन जगह-जगह हुआ है। भगवान् सन्तोंके लक्षण बताते हुए कहते हैं—

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥
बिगत काम मम नाम परायन। सांति बिरति बिनती मुदितायन॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानेहु तात संत संतत फुर॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥
निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुखपुंज॥

(रा०च०मा० ७।३८।१—८, ७।३८)

संतत्वकी प्राप्ति भगवान्की कृपासे ही होती है। कोई भी व्यक्ति अपने पुरुषार्थसे इस महनीय पदको प्राप्त नहीं कर सकता। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने संत-स्वभावकी प्राप्तिके लिये भगवान्से याचना करते हुए लिखा है—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो॥

(विनय-पत्रिका १७२)

ऐसे भगवत्संगी, भगवत्प्रेमी संत-भक्तके लवमात्रके सत्संगकी तुलना स्वर्ग एवं मोक्षसे भी नहीं की जा सकती; फिर मनुष्योंके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(श्रीमद्भा० १।१८।१३)

संतके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह शास्त्रोंका ज्ञाता, विद्वान् भी हो; यद्यपि कहीं-कहीं यह मणिकांचनयोग भी देखनेको मिलता है। इसी प्रकार यह भी आवश्यक नहीं है कि संसारके लोग उसको संत मानते हों। संसारके लोग जिनको संत मानते हैं, उनमें सच्चा संत वास्तवमें कोई बिरला ही होता है। इसीलिये किसी अनुभवी व्यक्तिने कहा है—

लाखों में मिले नहीं, करोड़ों में जोय।
अरबों-खरबों में मिले, एक या दोय॥

संतको दुर्लभ बतानेका तात्पर्य यह नहीं है कि संत बनना बहुत ही कठिन है। वास्तविक बात यह है कि संसारके अधिकांश मनुष्य विषय-भोगोंमें ही परमसुख मानकर उन्हींमें फँसे रहते हैं। कोई बिरला भाग्यशाली व्यक्ति ही विषय-भोगोंको तुच्छ, सारहीन समझकर और उनको ठोकर मारकर भगवत्प्राप्तिके लिये सच्चे हृदयसे प्रयास करता है। आजतक जितने भी संत हुए हैं और जिनको भगवत्प्राप्ति हुई है, वह भगवान्की कृपासे ही हुई है। भगवान्की अहैतुकी कृपा सभी मनुष्योंपर समानरूपसे बरस रही है। अत: कोई भी मनुष्य साधनकर भगवत्प्राप्ति कर सकता है।

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

चोरीसे नहीं जाऊँगी

[जानकीजी मारुतिसे]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

'माँ! लंका चारों ओरसे धू-धू करके जल रही है। किसीको किसीकी सुधि लेनेका अवकाश नहीं है। जो निशाचरी आपको घेरे बैठी थीं, वे भी प्राणोंकी—परिवारकी चिन्तामें जा चुकी हैं। आप भी प्रभुके दर्शन करने चलें। अपने इस अकिंचन हनुमान्‌के कन्धेपर विराजमान होइये। मेरा यही विनम्र निवेदन है।'

—कहते हुए हनुमन्तलाल अशोकवाटिकामें बैठी हुई जानकीजीके सम्मुख करबद्ध मुद्रामें बैठ गये। दो क्षण उनकी ओर देखते हुए जानकीजी बोलीं—

'हनुमन्त! तुम इस बन्दिनीकी दशा देखकर, भावुकतावश जो कह रहे हो, मैं उसके मर्मसे परिचित नहीं हूँ, ऐसा नहीं है। तुम कन्धोंपर क्या यदि अपनी माता देवी अंजनीके समान अंकपाशमें भी भरकर ले जाओ, तो भी मुझे आपत्ति नहीं है। तुम्हारे वायुवेगसे चलनेके कारण इस अगाध सागरके विस्तृत आकाशमण्डलसे गिरनेका भी मुझे भय नहीं है। मैं तुम्हारी शक्ति-सामर्थ्य, बुद्धिमत्तासे प्रभावित हूँ। प्रभुके प्रति तुम्हारी सात्त्विक निष्ठापर मुझे गर्व है।' किंतु—

'किंतु, क्या माँ!'

'हाँ पुत्र, मुझे अपना यह बन्दिवास, प्रभु-विरह प्रिय है, यह तो कोई भी नहीं मान सकता।' किंतु—

'यह भी नहीं, यह भी नहीं तो फिर विलम्ब क्यों? इस अशोकवृक्षपर पदाघातकर, अशोक-वाटिकाको धिक्कारती हुई, आप उठ क्यों नहीं रही हैं?'

'हनुमन्त! मेरा कष्ट, मेरा अपमान देखकर तुम्हारी करुणा-तुम्हारा ममत्व तुम्हें वही कहनेको प्रेरित कर रहा है, जो ऐसी स्थितिमें कोई प्रिय परिवारीजन ही कह सकता है। किंतु दूरदृष्टिसे विचारो, कल संसार क्या कहेगा? छली गयी सीता, छलकर चली गयी। अपहता होकर आयी, अपहृता-जैसी बनकर निकल गयी। उसके धनुर्धर स्वामीने क्या किया? जिन्होंने भगवान् शंकरका धनुष भंगकर मुझे प्राप्त किया, वे ही भगवान् शंकरके इस दम्भी अर्चकका दम्भ भंगकर मुझे ले जायँ, यही उचित होगा। मेरे प्रभुने पृथ्वीको राक्षसविहीन करनेका प्रण किया है, तो क्या उनकी परिणीता मैं, इस लंकाको राक्षसविहीन हुई देखे बिना चली जाऊँ? जो भुजाएँ मेरा बलात् हरणकर आकाशमार्गसे यहाँ लायीं, उन भुजाओंको कटकर धरतीकी धूलमें पड़ी हुई देखे बिना यहाँसे चली जाऊँ? महाबली अयोध्यानाथके वामांगमें लज्जासे नतमस्तक अथवा निर्लज्जोंकी भाँति मस्तक उठाकर बैठनेके लिये चली जाऊँ? वत्स! सीताका अपहरण तो छलपूर्वक हुआ। कदाचित् अकल्पित स्थितिमें मरण भी हो सकता है, किंतु वरण तो विधाता भी करना चाहें तो वे भी सफलताका मुख टुकुर-टुकुर ताकते रह जायँगे। अवधेश्वरके साथ उसी अवधेश्वरीकी शोभा होगी, जो अपने अपहर्ताके खण्डित मस्तकोंको सोपान बनाती हुई, सूर्यासनतक पदार्पण करेगी। त्रैलोक्यवन्दिता मेरी अग्रजा अंजनीके समुज्ज्वल क्षीर! तुम प्रभुके पास जाओ। उन्हें यह कथा सुनाओ। उन्हें यहाँ लेकर आओ। मुझे इस कठिन बन्दिवाससे छुड़ाओ, किंतु उनकी रक्षहीन पृथ्वी करनेकी प्रतिज्ञा-पूर्तिपर ही। अब जाओ, तुम्हारा कल्याण हो।'

नतमस्तक हनुमन्तलालने छलकनेको आकुल अपने नेत्रोंको तो तुरंत पोंछ लिया, किंतु उनके शब्दोंको अधरोंके कपाट खोलकर, प्रकट होनेमें तो कई क्षण लग गये। विदाईकी मुद्रामें वे कठिनतासे इतना ही बोल पाये कि 'जैसे प्रभुने अपनी मुद्रिका देकर भेजा, उसी प्रकार आप भी…'

'हाँ-हाँ' कहती हुई जानकीजीने अपने जूड़ेसे निकालकर दिव्य चूड़ामणि उनके हाथपर रख दी। यह चूड़ामणि शम्बरासुर-रणके पश्चात् महारानी कैकेयीको स्वयं इन्द्राणीने दी थी। वही महारानी कैकेयीद्वारा दी गयी चूड़ामणि उन्हें महारानी सुमित्राद्वारा मुँहदिखाईमें दी गयी थी। जो तीनों भुवनोंकी एकमात्र अद्वितीय आभूषण थी।
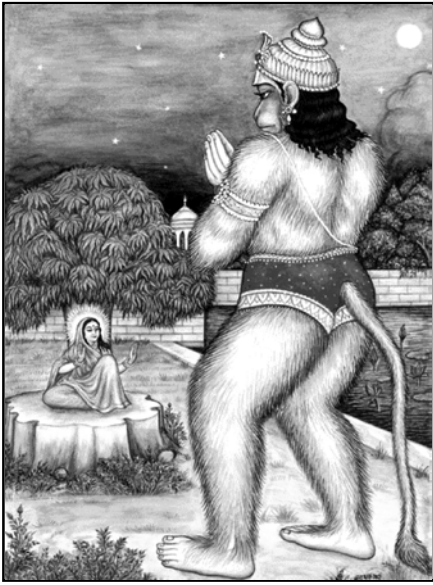
चूड़ामणि लेकर मारुति बोले, 'प्रभुके लिये कोई सन्देश…'

'हाँ, प्रभुसे इतना ही कहना कि इन्द्रपुत्र जयन्तपर जिस शरका उन्होंने सन्धान किया था, उस शरको शरालय (तरकश)-से निकालकर शरासन (धनुष)-पर स्थान दें।'

यह चित्रकूटकी वह घटना थी, जिससे लक्ष्मण भी अनभिज्ञ थे। साष्टांग प्रणाम करते हुए पवनपुत्रके मस्तकपर अपने दोनों हाथ रखते हुए जगदम्बा जानकीकी वाणी-निर्झरिणी अजस्र गतिसे प्रवाहित होने लगी—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू॥
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
चारों जुग परताप तुम्हारा। होहुँ प्रसिद्ध जगत उजियारा॥
साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥
अष्ट सिद्धि नौ निधि के दाता। अस बर दीन जानकी माता॥

—अनेकानेक अमोघ आशीर्वाद पाते हुए पवनपुत्र पवनगतिसे पवनमार्गसे उड़ चले। उनकी प्रहर्षित किलकारीने समुद्रतटपर निष्प्राण-जैसे बैठे वानरसमूहमें नूतन प्राणोंका संचार कर दिया। वे राघवेन्द्र श्रीरामको सन्देश देने, पवनवेगसे कूदते-फाँदते, एक-दूसरेको लाँघते-फलाँगते, जय-जयकारोंसे गगनको गुँजाते हुए पवनवेगसे चल पड़े।
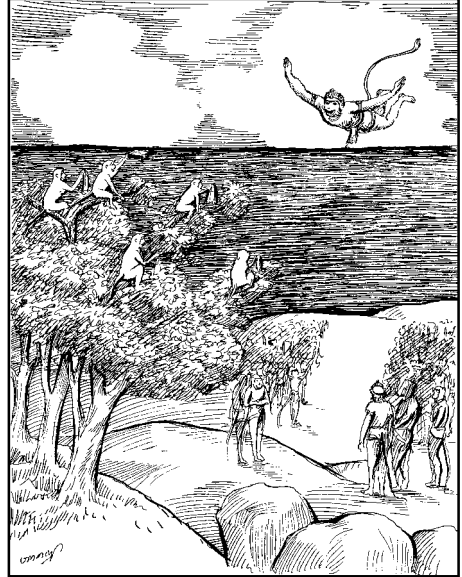
श्रीगंगाजीकी रथयात्राका विधान

(डॉ० श्रीश्याम गंगाधरजी बापट)

पुराणोंमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी, सूर्य, गणेश आदिकी रथयात्राओंका विधान है। भगवान् जगन्नाथकी रथयात्रा तो प्रसिद्ध ही है, उसी प्रकार गंगा-दशहरामें गंगाजीकी रथयात्रा निकालनेका भी विधान है। भगवती दुर्गाकी रथयात्राके समान ही गंगाकी रथयात्रा निकालनी चाहिये। नारदपुराण (उत्तरखण्ड ४३।५८-६०)-में इसका वर्णन मिलता है—

रथयात्रादिने तस्मिन् विभवे सति कारयेत् । रथारूढप्रतिकृतिं गङ्गायास्तूत्तरामुखम्॥
भ्रमन्त्या दर्शनं लोके दुर्लभं पापकर्मणाम् । दुर्गाया रथयात्रास्ति तथैवात्रापि कारयेत्॥
एवं कृत्वा विधानेन वित्तशाठ्यविवर्जितः । दशपापैर्वक्ष्यमाणैः सद्य एव विमुच्यते॥

यदि आपके पास वैभव हो तो स्वयं अन्यथा सार्वजनिक रूपसे पूजनोपरान्त गंगाकी रथयात्रा निकालनी चाहिये। रथपर गंगाकी प्रतिमा या चित्र रखकर, जिसका मुख उत्तर दिशाकी ओर हो, जो मोक्षका सूचक है, विराजमान करें। रथपर भ्रमण करती गंगाका दर्शन इस लोकमें पापी मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इस प्रकार विधिपूर्वक रथयात्रा सम्पन्न करनेसे करोड़ों जन्मोंसे संचित दशविध पाप नष्ट हो जाते हैं। वस्तुतः रथयात्रा गंगाके अविच्छिन्न प्रवाहको बनाये रखने, गंगाके गुणों एवं महिमासे परिचित करानेहेतु जनजागरणका एक माध्यम भी है, जिसकी आज महती आवश्यकता है।

गोवंशकी रक्षा कैसे हो ?

(डॉ० श्रीब्रह्मानन्दजी)

गोवंशकी रक्षा करना स्वतन्त्र भारतमें कोई सरल कार्य नहीं है। विडम्बना यह है कि भारतके स्वतन्त्रता-संग्रामके समय यह राग अलापा जा रहा था कि जब भारत स्वतन्त्र हो जायगा तब इस देशमें गोहत्या बन्द हो जायगी, किंतु स्वतन्त्र भारतमें ही सर्वाधिक गोहत्या हुई है। जबकि मुगल बादशाहोंने हिन्दुओंकी भावनाओंका आदर करते हुए गोहत्यापर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

गोहत्याका प्रारम्भ अंग्रेजी राजमें हुआ था। जबकि देशी रजवाड़ोंके समयमें यह बन्द थी। आज गोहत्याके कारण हिन्दुओंकी भावनाओंको ठेस तो पहुँच रही ही है; साथ ही गोधनका धार्मिक, आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणोंसे भी रक्षण करना समाजके लिये हितकारी है। परंतु यह एक ज्वलन्त प्रश्न है कि भारतमें विनाशके कगारपर खड़े गोवंशकी रक्षा कैसे की जाय? सर्वप्रथम यह समस्या कि इस देशमें गोचर भूमि प्राय: बहुत कम बची है। जबतक पर्याप्त गोचर भूमि नहीं होगी तो पशुधनकी रक्षा करना बड़ा कठिन है। यह एक कटु सत्य है। गोवंशकी रक्षाके सन्दर्भमें कतिपय व्यावहारिक समस्याएँ और उनके समाधान इस प्रकार हैं—

१. यदि गोवंशकी रक्षा करना है तो सर्वप्रथम गोचारण भूमिका प्रबन्ध होना चाहिये।

२. हम गोवंशके प्रति मौखिक सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। व्यावहारिक रूपसे गायोंकी अपेक्षा भैंसें अधिक पाल रहे हैं। हिन्दुओंमें गायोंकी प्रति भावनात्मक भावना तो है; क्योंकि गोवंश हिन्दू-धर्म और संस्कृतिका युग-युगान्तरसे अंग रहा है।

३. आज शहरोंमें गायें गलियोंमें भटकती रहती हैं। गोतस्कर उन्हें चोरीसे रातको उठा लेते हैं और ट्रकोंमें लादकर ले जाते हैं। समाचार-पत्रोंमें इस प्रकारकी घटनाएँ प्राय: रोज पढ़ी जाती हैं।

४. कई राज्योंमें गोहत्यापर विधिवत् प्रतिबन्ध है, परंतु गोवंशको राज्यसे बाहर ले जानेमें भी कठोर प्रतिबन्ध होना चाहिये। जैसे राजस्थान, हरियाणा और मध्य प्रदेशमें प्रतिबन्ध है। गोतस्करोंद्वारा ट्रकोंमें लादकर गाय-बैलोंको दूसरे राज्योंमें ले जाया जाता है, आवश्यकता है कि जिस राज्यमें गोहत्यापर प्रतिबन्ध नहीं है, वहाँ गोहत्याको रोकनेका उपाय किया जाय।

५. भारतमें बहुमत किसानोंका है। आज किसानके पास जोतनेके लिये कृषिभूमि कम होती जा रही है। यदि किसान बैलों या ऊँटोंसे खेती करे तो लाभकारी है। उससे डीजलका खर्च बचता है और खेतोंको गोबरकी कम्पोस्ट खाद भी मिलती है। कृत्रिम खाद यूरिया आदि उर्वरक जमीनको खराब करते हैं। कीटनाशक दवाओंको खेतोंमें छिड़कना धरतीको ऊसर बनाना है। जबसे इस देशमें परम्परागत बैलोंकी खेतीको छोड़कर ट्रैक्टर चलने लगे हैं, तबसे गोवंशपर संकटके बादल छा गये हैं।

६. यदि किसी किसानके पास केवल दस बीघा जमीन है तो उसको ट्रैक्टरकी आवश्यकता नहीं है। मारवाड़के किसानोंकी एक बड़ी शिकायत है कि जबसे भूडैली, रेतीली जमीनपर ट्रैक्टर चलने लगे तबसे अकाल शुरू हो गये हैं। इसका यह कारण है कि रेतीली जमीनमें जो घास या छोटी खेजड़ी आदिकी जड़ें होती हैं, ट्रैक्टर उन्हें खींच ले जाता है। बैलों और ऊँटोंके हलोंसे वह बच जाती है। यह दु:खका विषय है कि खेजड़ी वृक्ष जो राजस्थान या रेगिस्तानका कल्पवृक्ष है, अब वह विनाशके कगारपर है।

७. यदि मुसलमान भाई हिन्दुओंकी भावनाओंको गोहत्या करके ठेस न पहुँचायें तो दोनों मिलकर इस देशमें एक हो जायेंगे, कभी भी कोई साम्प्रदायिक दंगा नहीं होगा और दोनों ही प्रगति कर सकेंगे।

८. किसी भी अपराधको कानूनके द्वारा बन्द नहीं किया जा सकता। लोगोंमें सत्संगति और सद्बुद्धि होगी

तभी यह सम्भव है। मृत्युदण्डका प्रावधान है फिर भी हत्याएँ हो रही हैं। कानूनका भय तो अवश्य होता है। समाजको सुचारु रूपसे चलानेके लिये कानून तो आवश्यक है, परंतु उससे भी आवश्यक है—गोके प्रति पूज्य भावना। पहले हर घरमें गायें होती थीं। अब गोमाता उपेक्षाका शिकार हैं। सरकारका भी यह कर्तव्य है कि गोपालनपर जोर दे और अधिक-से-अधिक गोशालाओंकी स्थापना हो। किसी भी धर्ममें गोवधका विधान नहीं है। मांसाहारसे शाकाहार और मदिरापानसे दुग्धपान उत्तम है—यह विज्ञानका सिद्धान्त है।

९. गोरक्षाके उपायके बारेमें पूज्य स्वामी करपात्रीजी महाराजने लिखा है—बूढ़ी, लूली-लँगड़ी, रोगी, दूध न देनेवाली—चाहे किसी भी प्रकारकी गौ हो, उसको बेचना या उसकी उपेक्षा करना महापाप है। हर तरहसे आदरपूर्वक उनकी रक्षा, सेवा, पूजा कुटुम्ब, समाज तथा राष्ट्रका मंगल करनेवाली होती है।

वेदमें कहा गया है **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।'** मतभेद होना स्वाभाविक है। गायकी रक्षाके लिये सनातनी, आर्यसमाजी, बौद्ध, जैन और सिक्ख एकमत हैं। इस्लाम और ईसाई मतमें भी गोवधका विधान नहीं है। इसलिये कहा गया है **'गावो विश्वस्य मातरः।'**

इस देशमें प्रकृतिका निरन्तर विनाश हो रहा है। भयंकर पर्यावरण-प्रदूषण हो रहा है। विकास भी देशके लिये आवश्यक है, परंतु विकास और पर्यावरणका सन्तुलन बिगड़ गया है। भारत धर्मप्रधान और कृषि-प्रधान देश रहा है। यह अमेरिका या यूरोप नहीं है। भारत एक प्राचीन देश है। यह प्रकृतिका देश है, इसे अमेरिका या पश्चिमी देशोंके समान नहीं बनाया जा सकता है।

जिस देशमें दूधकी नदियाँ बहती थीं, एक-एक ऋषिके आश्रममें दस-दस हजार गायें होती थीं; आज दूधकी तो क्या पानीकी नदियाँ भी सूख गयी हैं। विशेषकर राजस्थानकी बरसाती नदियाँ इसकी प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जमीनका जलस्तर पातालको जा रहा है। सरोवर, जोहड़ और कूप भी सूख गये हैं। कारण यह कि वन कट गये हैं जबकि वृक्षोंकी रक्षा करना धर्मका एक अंग माना जाता था। बड़ और पीपल लुप्त हो रहे हैं। वृक्षोंके अभावमें वर्षा कम होने लगी है। जलवायु-परिवर्तन हो रहा है, सारी धरती गरम हो रही है।

यह धरतीमाता भी एक गऊके समान है, जो पर्यावरण-प्रदूषणसे ग्रसित है। गोधन और पशुधनसे भारत धनी देश हो सकता है, जैसे पहले था।

राष्ट्रपिता पूज्य महात्मा गांधीजीने गोरक्षाके सम्बन्धमें अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं—यह बात मुख्यतः सरकारके हाथकी है। इसमें लोगोंको पशु पालना, दुग्धालय चलाना और साँड़ चुननेकी शिक्षा देना जरूरी है। मेरे विचारके अनुसार सारी प्रजाके साथ दृढ़तासे और ज्ञानपूर्वक काम करते हुए गोधनकी रक्षा करना राज्यका कर्तव्य है। बालकों और लोगोंको नीरोग और सस्ता दूध मिल सके—ऐसी व्यवस्था करना राज्यके प्रथम कर्तव्योंमेंसे एक कर्तव्य है, ऐसा मैं मानता हूँ। वास्तवमें हम लोग सिद्धान्तोंका गुणगान करते हैं, जैसा गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा है—

'पर उपदेस कुसल बहुतेरे।'

—व्यवहारमें कुछ नहीं है, जबानी जमा खर्चमें कोई कार्य नहीं होता, गोमाता, गंगामैया और श्रीमद्भगवद्गीता राजनीतिसे ऊपर हैं। सिद्धान्तोंकी दुहाई देना सरल है और व्यावहारिक या क्रियात्मक रूपसे असली जामा पहनाना बड़ा कठिन है।

आज हमारे देशमें पशुपालन, गोसेवा आदिके सम्बन्धमें दयनीय स्थिति हो रही है। निरन्तर पशुधन घट रहा है। गोवंशपर आज भयंकर विपत्ति आयी है। हम लोग क्रियात्मक रूपसे कुछ भी नहीं कर रहे हैं। एक काम गोदान है, जिससे हमें गोमाता मृत्युके पश्चात् वैतरणी नदीसे पार कर दें। यह हमारी कितनी स्वार्थपूर्ण भावना है। हमें गोमातासे मीठा दूध चाहिये, पर हम गोसेवा और उसकी रक्षासे कोसों दूर हैं, यह कैसी विडम्बना है?

गोपी-प्रेमका वैशिष्ट्य

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

एक भाई गोपी-प्रेमकी बात पूछ रहा था। इसलिये कहना है कि जबतक प्राणीका शरीर और संसारसे सम्बन्ध नहीं छूटता, जबतक वह शरीरको मैं और संसारको अपना मानता है, तबतक गोपी-प्रेमकी बात समझमें नहीं आती। प्रेमीमें चाह नहीं रहती इसलिये प्रेमी अपने लिये कुछ नहीं करता, जो कुछ करता है वह अपने प्रियतमको रस देनेके लिये ही करता है। यहाँ तर्कशील मनुष्य यह प्रश्न कर सकता है कि भगवान् तो सब प्रकारसे पूर्ण और रसमय आनन्दस्वरूप हैं। उनमें किसी प्रकारका अभाव ही नहीं है। उनको रस देनेकी बात कैसी? उसको समझना चाहिये कि यही तो प्रेमकी महिमा है, जो आप्तकाममें भी कामना उत्पन्न कर देता है, सर्वथा पूर्णमें भी अभावका अनुभव करा देता है। प्रेमियोंका भगवान् सर्वथा निर्विशेष नहीं होता। उनका भगवान् तो अनन्त दिव्य गुणोंसे सम्पन्न होता है और उनका अपना प्रियतम होता है। उनकी दृष्टिमें भगवान्के ऐश्वर्यका भी महत्त्व नहीं है। उनका भगवान् तो एकमात्र प्रेममय और प्रेमका ग्राहक है।

प्रेमी भगवान्को रस देनेके लिये ही अपना जीवन सुन्दर बनाते हैं, जैसे सुन्दर पुष्पको खिला हुआ देखकर वाटिकाका स्वामी उस फूलसे प्रेम करता है, उसको हाथमें लेता है, सूँघता है, उसकी शोभाको देखकर प्रसन्न होता है; वैसे ही भगवान् भी अपने प्रेमीको चाहरहित सुन्दर जीवनमुक्त देखकर प्रसन्न होते हैं, उनको उससे रस मिलता है।

पुष्प तो जड होता है, इस कारण स्वयं मालीसे प्रेम नहीं करता। जैसे धनसे मनुष्य प्रेम करता है, परंतु धन जड होनेके कारण मनुष्यसे प्रेम नहीं करता। जीव जड नहीं है, चेतन है; इसलिये यह भी अपने प्रियतमसे प्रेम करता है अर्थात् भक्त भगवान्से प्रेम करता है और भगवान् भक्तसे प्रेम करते हैं। भगवान् भक्तके प्रियतम और भक्त भगवान्का प्रियतम हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण और किशोरीजीकी प्रेमलीलासे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है। उनकी लीला अपने भक्तोंको प्रेमका तत्त्व समझाने और रस प्रदान करनेके लिये ही हुआ करती है। एक समय श्यामसुन्दरके मनमें किशोरीजीको प्रेमरस प्रदान करनेके लिये उनकी परीक्षाकी लीला करनेका संकल्प हुआ, तो आपने एक देवांगनाका रूप धारण किया और किशोरीजीके पास गये। बातचीतके प्रसंगमें श्यामसुन्दरने कहा—'किशोरीजी! आप श्याम-सुन्दरसे इतना प्रेम क्यों करती हैं? वे तो आपसे प्रेम नहीं करते।' तब किशोरीजीने कहा—'तुम इस बातको क्या समझो! प्रेम करना तो श्यामसुन्दर ही जानते हैं। वे ही प्रेम करते हैं। मुझमें प्रेम कहाँ है?' देवांगना बोली—'नहीं-नहीं, वे तो प्रेम नहीं करते, तुम्हीं प्रेम करती हो।' तब किशोरीजीने कहा—'देवी! प्रेम करना जैसा श्यामसुन्दर जानते हैं, वे जितना और जैसा प्रेम करते हैं, वैसा कोई नहीं कर सकता।' तब देवांगना बोली—'मैं तो यह नहीं मान सकती।' किशोरीजीने कहा—'तुमको कैसे विश्वास हो?' देवांगना बोली—'यदि वे आपके बुलानेसे आ जायँ तो मैं समझूँ कि सचमुच वे भी आपसे प्रेम करते हैं।' किशोरीजीने कहा—'यह तो तब हो सकता है जबकि कुछ समयतक तुम मेरी सखी बनकर यहाँ रहो।' देवांगनाने किशोरीजीकी बात स्वीकार की और उनकी सखी बनकर रहने लगी। तब किशोरीजीने भावमें प्रविष्ट होकर भगवान्से कहा—'प्यारे! तुम कहाँ हो?' इतना कहते ही देवांगनासे भगवान् श्यामसुन्दर हो गये। उनको देखकर किशोरीजीने कहा—'ललिते! वह देवांगना कहाँ है? उसे बुलाकर प्यारेका दर्शन कराओ।' तब ललिता बोली—'प्यारी! उसीमेंसे यह देव प्रकट हुए हैं, वह अब कहाँ है।' ललिता विवेक-शक्तिका अवतार है, यह भक्त और भगवान्को मिलाती रहती है। इस लीलासे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भक्त भगवान्से प्रेम करता है और भगवान् भक्तसे प्रेम करते हैं।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

आध्यात्मिक उन्नतिके अमोघ साधन

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आप आध्यात्मिक उन्नतिके लिये लगनके साथ साधनामें प्रवृत्त होना चाहते हैं और साधनाके कुछ उपाय पूछते हैं, सो बड़ी अच्छी बात है। आपका यह विचार बहुत ही उत्तम है। मेरी समझसे आप नीचे लिखी बातोंका सावधानीसे पालन करें तो आशा है कि आपको शीघ्र तथा विशेष लाभ होगा—

१. खान-पानकी शुद्धि (असत् कमाईका अन्न और राजस-तामस पदार्थ कभी न खायँ। मांस, अण्डे, मद्य, जूठन, हिंसायुक्त तथा नशीली चीजोंका सेवन बिलकुल न करें।)

२. सन्ध्या, गायत्री-जप, नियमित नाम-जप, स्वाध्याय जो करते हैं, श्रद्धापूर्वक करते रहें।

३. नियमितरूपसे कम-से-कम २१६०० (इक्कीस हजार छः सौ) भगवन्नामका विशेष जप करें; कुछ नाम-कीर्तन भी करें।

४. ब्रह्मचर्यका पालन करें।

५. सदा सद्ग्रन्थों—उपनिषद्, गीता, रामायण, भागवत आदिका अध्ययन करें।

६. बुरे संगका सर्वथा त्याग करके भक्त, संत तथा सदाचारी पुरुषोंका संग करें।

७. नित्य अपनी भाषामें साधनाकी सफलताके लिये श्रद्धापूर्वक भगवान्से प्रार्थना करें।

आप श्रद्धापूर्वक करके देखें—कितना लाभ होता है।

शेष भगवत्कृपा।

(२)

शरीरको भगवत्प्राप्तिका साधन बनाइये

प्रिय भाई, सप्रेम हरिस्मरण। तुम्हारा पत्र मिला। शरीरके सम्बन्धमें यह निश्चय रखना चाहिये कि यह निश्चय ही अनित्य और विनाशी है। हम प्रतिदिन देख रहे हैं—हट्टे-कट्टे जवानोंके शरीर पटापट मृत्युके मुखमें जा रहे हैं। अतः इस शरीरमें मोह-आसक्ति न रखकर इससे वास्तविक लाभ उठा लेना चाहिये। यह स्वयं विनाशी होते हुए भी नित्य अविनाशी परम तत्त्व भगवान्की प्राप्तिका—सत्यकी उपलब्धिका साधन हो सकता है। बिना प्रमादके प्रतिदिन इसको इसी काममें लगाये रखना चाहिये। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ—सभीके द्वारा नित्य-निरन्तर भगवान्का सम्पर्क प्राप्त करते रहना चाहिये। समय जा रहा है—इसलिये आलस्य, प्रमाद, भोगलिप्सा, प्रपंचके सेवन आदिमें इसे नहीं लगाना चाहिये। बुरे कर्म तो कभी करने ही नहीं चाहिये। बुरे कर्म करनेपर तो शरीर घोर नरक और आसुरी योनिकी प्राप्तिका साधन बन जायगा।

संसारके हानि-लाभ, सुख-दुःख वास्तवमें कुछ हैं नहीं। शरीर तथा नाममें 'मैं'-पन होनेसे ही इसका बोध होता है। यदि हैं तो यह मानना चाहिये कि सुख-दुःख, लाभ-हानि, आराम-पीड़ा सभीके द्वारा भगवान्का आशीर्वाद प्राप्त हो रहा है। सब उन्हीं मंगलमय प्रभुका मंगल-विधान है। सभीमें सदा उन्हींका मधुर संस्पर्श प्राप्त करना चाहिये। प्रत्येक घटनामें उनके मुसकानभरे मुखके दर्शन करने चाहिये। शेष भगवत्कृपा।

(३)

प्रेमका स्वरूप

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। प्रेम जब वास्तविक रूपमें आत्मप्रकाश करता है, तब वह जीवनमें सब ओर छा जाता है। देवर्षि नारद कहते हैं—'**तत्प्राप्य तदेवावलोकयति, तदेव शृणोति, तदेव भाषयति, तदेव चिन्तयति।**' (नारदभक्तिसूत्र ५५) इस प्रेमको पाकर वह प्रेम ही देखता है, प्रेम ही सुनता है, प्रेम ही बोलता है और प्रेमका ही चिन्तन

करता है।' उसकी इन्द्रियाँ तथा उसके मनकी सारी वृत्तियाँ प्रेमरूपा बन जाती हैं। इस अवस्थामें भोगको स्थान ही कहाँ है। प्रेमास्पदके प्रेमके अतिरिक्त जगत्में कुछ रह ही नहीं जाता। यह स्थिति अत्यन्त विचित्र होती है; उसका कोई वर्णन नहीं हो सकता—**'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।'** (नारदभक्तिसूत्र ५१) प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह पागल हो जाता है। पागलकी तो वृत्तियाँ विकृत होती हैं; पर यहाँ तो वृत्ति केवल पवित्र प्रेमाकारमें परिणत रहती है। महाप्रभु श्रीचैतन्यकी इसी वृत्तिके कीर्तनमें उनकी कीर्तन-ध्वनि सुनकर बड़े-बड़े तार्किक, नैयायिक पण्डित बलात् प्रेमाकर्षित होकर बाह्यज्ञानविस्मृत हो नाच उठते थे। यह प्रेमोन्माद त्रिभुवनको पावन करनेवाला है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भागवत ११। १४। २४)

'जिसकी वाणी प्रेमसे गद्गद हो रही है, चित् पिघलकर एक ओर बहता रहता है, एक क्षणके लिये भी रोनेका ताँता नहीं टूटता, परंतु जो कभी-कभी खिल-खिलाकर हँसने भी लगता है, कहीं लाज छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है, तो कहीं नाचने लगता है, भैया उद्धव! मेरा वह भक्त न केवल अपनेको बल्कि सारे संसारको पवित्र कर देता है।'

जबतक ऐसा न हो, तबतक बार-बार मनको तथा इन्द्रियोंको हर उपायसे भगवान्के प्रेममें लगाते रहना चाहिये। भोगोंमें अरुचि तथा भजनमें रुचि पैदा हो, इन्द्रियोंको तथा मनको सदा ही संगमें रखना चाहिये। यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवत्प्रेममें कामनाको ही स्थान नहीं है, भोगकी तो बात ही नहीं। सदैव सावधान रहो और लगे रहो। शेष भगवत्कृपा।

(४)

पूर्ण समर्पणमें कमी

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण! तुम्हारे कई पत्र मिले। तुमने लिखा, सो तो ठीक है, पर बात ऐसी है कि तुम अपना पूर्ण समर्पण मानते हो; मानना भी चाहिये—मानते-मानते ही होता है, पर तुम्हारे मनमें अपने लिये जो बार-बार चिन्ता होती है, मनमें उद्विग्नता तथा निराशा-सी आती है, मनमें भय होता है, दूसरे-दूसरे उपाय सोचे जाते हैं, इसका अर्थ ही है कि तुम पूर्णतया निर्भर नहीं हो; इसीसे चिन्ता, उद्वेग, भय आदि होते हैं। पूर्ण समर्पणमें सहज पूर्ण निर्भरता होती है। पूर्ण रूपसे निश्चिन्तता और निर्भयता आ जाती है। वास्तवमें विश्वासकी कमीसे ही पूर्ण समर्पण नहीं होता—

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥

(रा०च०मा० ७। ४६। ३)

'श्रीरामचरितमानस' के ये शब्द याद रखनेयोग्य हैं। विश्वास होनेपर किसी भी परिस्थितिमें किसी प्रकारका भी उद्वेग या क्षोभ नहीं होगा। न भविष्यकी चिन्ता होती है, न स्खलन होता है। विश्वासी समर्पणमय जीवन सदा-सर्वदा सहज ही प्रभुके अनुकूल चेष्टा करता हुआ प्रभुकी स्मृतिमय बना रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह विवेकशून्य हो जाता है; अवश्य ही विवेककी धारा बदल जाती है। उसका विवेक सदा जाग्रत् रहता है, जो कभी उसको प्रभुके विपरीत विचार या क्रिया नहीं करने देता, कभी सन्देह नहीं आने देता और उत्तरोत्तर विश्वास, अनुकूल आचरणकी प्रवृत्ति और सात्त्विकी शान्ति तथा आनन्दको बढ़ाता रहता है। अतएव अपनी ओर सदा देखते रहना चाहिये और नित्य-निरन्तर भगवान्की अहैतुकी कृपाका, उनकी महान् प्रीतिका स्मरण करते रहना चाहिये। विश्वास जितना ही बढ़ेगा, उतनी ही निर्भरता बढ़ेगी, उतना ही समर्पण पूर्णताकी ओर जायगा। विश्वास रखो—भगवत्कृपासे ऐसा हो ही जायगा। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ६।४ बजेतक	गुरु	हस्त रात्रिमें ८।२५ बजेतक	२४मार्च	**वसन्तोत्सव (होली)।**
द्वितीया रात्रिमें ८।११ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, ११।३ बजेतक	२५ ,,	**तुलाराशि** दिनमें ९।४४ बजेसे।
तृतीया ,, १०।१५ बजेतक	शनि	स्वाती ,, १।३८ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।१२ बजेसे रात्रिमें १०।१५ बजेतक।
चतुर्थी ,, १२।८ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ३।५९ बजेतक	२७ ,,	**संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।२९ बजे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ९।२४ बजेसे।
पंचमी ,, १।४३ बजेतक	सोम	अनुराधा अहोरात्र	२८ ,,	**रंगपंचमी।**
षष्ठी ,, २।५० बजेतक	मंगल	अनुराधा प्रातः ६।३ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।५० बजेसे, **मूल** प्रातः ६।३ बजेसे।
सप्तमी ,, ३।३० बजेतक	बुध	ज्येष्ठा दिनमें ७।४० बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें ३।१० बजेतक, **धनुराशि** दिनमें ७।४० बजेसे।
अष्टमी ,, ३।३८ बजेतक	गुरु	मूल ,, ८।४८ बजेतक	३१ ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत, रेवती**का सूर्य दिनमें ८।१६ बजे, **मूल** दिनमें ८।४८ बजेतक।
नवमी ,, ३।१५ बजेतक	शुक्र	पू० षा० ,, ९।२७ बजेतक	१ अप्रैल	**मकरराशि** दिनमें ३।३० बजेसे।
दशमी ,, २।२३ बजेतक	शनि	उ० षा० ,, ९।३७ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें २।४९ बजेसे रात्रिमें २।२३ बजेतक।
एकादशी ,, १।४ बजेतक	रवि	श्रवण ,, ९।१८ बजेतक	३ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें ८।५७ बजेसे, **पापमोचनी एकादशीव्रत** (सबका), **पंचकारम्भ** रात्रिमें ८।५७ बजे।
द्वादशी ,, ११।२४ बजेतक	सोम	धनिष्ठा ,, ८।३५ बजेतक	४ ,,	× × × ×
त्रयोदशी ,, ९।२४ बजेतक	मंगल	शतभिषा दिनमें ७।३१ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।२४ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिमें १२।३२ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत, बुढ़वामंगल।**
चतुर्दशी ,, ७।१३ बजेतक	बुध	पू० भा० प्रातः ६।१२ बजेतक उ० भा० रात्रिशेष ४।४२ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।१९ बजेतक। **मूल** रात्रिशेष ४।४२ बजेसे।
अमावस्या सायं ४।५१ बजेतक	गुरु	रेवती रात्रिमें ३।३ बजेतक	७ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ३।३ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ३।३ बजे, **अमावस्या।**

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, चैत्र शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।२६ बजेतक	शुक्र	अश्विनी रात्रिमें १।२२ बजेतक	८ अप्रैल	**चैत्र नवरात्रारम्भ, 'सौम्य'** संवत्सर प्रारम्भ, **मूल** रात्रिमें १।२२ बजेतक।
द्वितीया ,, १२।० बजेतक	शनि	भरणी ,, ११।४४ बजेतक	९ ,,	**वृषराशि** रात्रिशेष ५।२२ बजेसे।
तृतीया ,, ९।४२ बजेतक	रवि	कृत्तिका ,, १०।१६ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ८।३७ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, गणगौर।**
चतुर्थी ,, ७।३२ बजेतक	सोम	रोहिणी ,, ८।५८ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।३२ बजेतक।
पंचमी रात्रिशेष ५।३९ बजेतक				
षष्ठी रात्रिमें ४।३ बजेतक	मंगल	मृगशिरा ,, ८।१ बजेतक	१२ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें ८।३० बजेसे, **श्रीसूर्यषष्ठीव्रत, श्रीस्कन्दषष्ठी।**
सप्तमी ,, २।५० बजेतक	बुध	आर्द्रा ,, ७।२२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।५० बजेसे, **मेष-संक्रान्ति** रात्रिमें ९।३९ बजे, **खरमास समाप्त, वैशाखी।**
अष्टमी ,, २।३ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु ,, ७।९ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें २।२७ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १।१३ बजेसे, **श्रीदुर्गाष्टमीव्रत, महानिशापूजा।**
नवमी ,, १।४४ बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, ७।२४ बजेतक	१५ ,,	**श्रीरामनवमीव्रत, मूल** रात्रिमें ७।२४ बजेसे।
दशमी ,, १।५७ बजेतक	शनि	आश्लेषा ,, ८।९ बजेतक	१६ ,,	**सिंहराशि,** रात्रिमें ८।९ बजेसे।
एकादशी ,, २।४४ बजेतक	रवि	मघा ,, ९।२५ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें २।२० बजेसे २।४४ बजेतक, **कामदा एकादशीव्रत** (सबका), **मूल** रात्रिमें ९।२५ बजेतक।
द्वादशी ,, ३।५५ बजेतक	सोम	पू० फा० ,, ११।८ बजेतक	१८ ,,	**कन्याराशि** रात्रि ५।३९ बजेसे।
त्रयोदशी रात्रिशेष ५।३२ बजेतक	मंगल	उ० फा० ,, १।१६ बजेतक	१९ ,,	**भौमप्रदोषव्रत, श्रीमहावीर-जयन्ती, सायन वृषराशिका सूर्य** रात्रिमें ११।२० बजे।
चतुर्दशी अहोरात्र	बुध	हस्त ,, ३।४२ बजेतक	२० ,,	× × × ×
चतुर्दशी दिनमें ७।२७ बजेतक	गुरु	चित्रा अहोरात्र	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।२७ बजेसे रात्रिमें ८।२९ बजेतक, **तुलाराशि** सायं ५।० बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, ९।३१ बजेतक	शुक्र	चित्रा प्रातः ६।१७ बजेतक	२२ ,,	**पूर्णिमा, श्रीहनुमज्जयन्ती, वैशाखस्नान प्रारम्भ।**

कृपानुभूति

गंगा माँकी कृपासे अभिलषित अन्तिम दर्शन

बात सन् १९८४ ई० की है, तब दूरसंचार-क्रान्ति नहीं थी, हमारा गाँव मध्य प्रदेश एवं राजस्थानकी सीमापर था, जहाँ टेलीफोन आदिकी सुविधा नहीं थी, व्यक्तिश: पहुँचकर या डाकद्वारा ही सन्देश सम्भव होता था।

मेरी इच्छा बगीचा लगानेकी थी, ऐसी चर्चा पिताश्रीसे पूर्वमें हुई थी। एक दिन रविवारको सहसा उन्होंने प्रस्तावित किया कि वर्षान्त हो रहा है फिर कब तुम्हारा बगीचा सरसब्ज होगा? पर्याप्त समयसे वे रुग्णावस्थामें नित्यकर्म आदि कर सकनेकी क्षमतामात्र रखते थे, ऐसी अवस्थामें मैं उन्हें एक रात्रि भी नहीं छोड़ सकता था, किंतु प्रस्तावको उनकी इच्छा मानकर मैंने कहा कि पौधे कोटा-जैसे बड़े शहरसे लाने पड़ेंगे, उन्होंने कहा कि ले आओ। सपरिवार हमने खीर-पूड़ीका भोजन उनके साथ किया और आज्ञा लेकर दोपहरको रवाना हो गया।

छोटे भैयाको उनकी सेवाका निर्देश देकर चल दिया। २०-२५ किलोमीटर दूर छीपा बड़ौदसे बस बदलकर सालपुरा रेलवे स्टेशनकी मोटर पकड़ी और ५ बजे सायं रेलसे कोटाके लिये रवाना हो गया।

इधर इतनी ही देरमें पिताश्रीकी तबियत बिगड़ गयी और घरसे एक व्यक्तिको मुझे बुलानेहेतु रवाना कर दिया गया, वह मुझे नहीं पकड़ सका; क्योंकि रेल निकल चुकी थी, उस समय आवागमनके अन्य साधन नहीं थे, मैं दूसरे दिन सुबह ११ बजे कोटा पहुँच सका।

इधर मैं ट्रेनसे कोटा पहुँचा और स्टेशनपर उतरकर विचार किया कि यहाँ अच्छे किस्मके पौधे नहीं मिल सकते। अत: सहारनपुर (यू०पी०)-से लाये जायँ तो उत्तम रहेगा, ऐसा विचारकर जंक्शनपर रुककर रात्रिको अवध एक्सप्रेससे दिल्लीके लिये रवाना हो गया।

सुबह कोटामें मेरी तलाशकर निराश व्यक्ति पुन: घर लौटा, मैं दिल्लीसे मेरठ अपने मित्रके पास पहुँचा और सहारनपुरका प्रोग्राम बनाकर दूसरे दिन प्रात: वहाँ ४-५ सौ पौधोंको पसन्दकर आर्डर दे, पैकिंगके लिये कहा।

हरिद्वार निकट होनेके कारण मैंने गंगास्नानकी इच्छा अपने मित्रसे व्यक्त की और तत्काल हरिद्वारके लिये रवाना हो गया। शीघ्र ही हरकी पैड़ीपर पहुँचकर स्नान करने लगा। ज्यों ही मैंने गंगा माँको पुकारकर 'अभिलाषा पूर्ण करो माँ!' ऐसा कहते हुए डुबकी लगायी। डुबकी लगाते ही खड़ा होकर सामने देखा तो मेरी दृष्टि वहाँ बनी हुई पुलियाकी दीवारपर पड़ी, जहाँ लिखा था 'अस्थिप्रवाहघाट'। बस, मुझे और कुछ भी नहीं दिखा, केवल वही शब्द मेरी दृष्टिमें जम गया, थोड़ी देरमें चक्कर आने लगा, केवल वही दिखता रहा। मेरे मित्रादि स्नानमें तल्लीन थे और मैं व्याकुल गंगामें खड़ा था, अन्त:करणमें सहसा प्रेरणा हुई—आदेश आया कि तुम शीघ्र घर पहुँचो।

मैंने अपने मित्र एवं परिचारकसे शीघ्र बाहर निकलने हेतु आग्रह किया तो वे आश्चर्य करने लगे कि भाई साहबको क्या हो गया? बार-बार पूछनेपर मैंने एक ही बात दोहरायी कि शीघ्र चलना है, बसमें बैठो। उनकी दर्शनोंकी, मन्दिर आदिपर जाने एवं शहर घूमनेकी इच्छा थी, पर मेरी व्याकुलता देखकर वे बसमें बैठकर शीघ्र सहारनपुर आ गये, पौधोंको लिया और दिल्लीके लिये चल दिया, दिल्लीसे देहरादून एक्सप्रेसद्वारा सुबह कोटा पहुँचा, कोटासे बीनाकी ट्रेनद्वारा दोपहर सालपुरा स्टेशन उतरकर गाँववाली बसको पकड़ा, २५-३० कि०मी० पहले ही गाँवके यात्री मिले और उन्होंने पिताश्रीकी तबियत बहुत ज्यादा खराब होनेकी सूचना दी, साधनोंकी कमीके कारण सायंकालतक घर पहुँच पाया, वहाँ जाकर पूर्व सूचनाके अनुरूप सारा हाल देखा, पिताश्री बेहोश थे। परिजन एकत्रित थे, मैंने ज्यों-ही चरण छूकर आवाज लगायी तो वे बोल उठे। मैंने कहा—मैं आ गया हूँ, तो उन्होंने कहा—तू आ गया, बहुत अच्छी बात है, ऐसा कहकर पुन: अचेत-से हो गये। रात्रिको कभी होश आया तो हम राम-राम स्मरण करवाते रहे और ब्राह्म-मुहूर्तमें उनका श्वास रुक गया, वे श्रीहरिशरण हुए। माँ गंगाकी महती कृपासे मेरी अन्तिम दर्शनोंकी अभिलाषा पूर्ण हुई; क्योंकि लगभग १००० कि०मी० दूर सन्देश देकर वहाँसे शीघ्र घर पहुँचनेको कहनेवाला माँ गंगाके अतिरिक्त कौन था? ऐसी परम कारुणिक गंगामैयाकी जय!

—वैद्य श्रीकृष्ण शर्मा

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गंगारजके प्रयोगसे चर्मरोगसे मुक्ति

आयुर्वेद एवं वैद्यकशास्त्रके ग्रन्थोंमें गंगाजलके नियमित पानसे अजीर्णरोग, अजीर्णज्वर, संग्रहणी, राजयक्ष्मा, पुराना श्वासरोग आदि नष्ट होनेकी बात आयी है, नियमित गंगा-स्नान करनेसे मस्तकके समस्त रोगों तथा चर्मरोगोंका नाश होता है। चर्मरोगके विषयमें मैं अपना एक अनुभव साझा कर रहा हूँ। सन् २००७-०९ ई० में मेरे दाहिने हाथकी तर्जनी एवं मध्यमा अँगुलीमें कालीमिर्चके दानोंके बराबरके ८-१० मस्से उभर गये, कई उपचार किये, पर कुछ भी फर्क नहीं हुआ। मैंने परिवारमें माँसे सुना था कि गंगाकी रजके प्रयोग से दाद-खुजली मिट जाते हैं। मैंने भी सन् २०१० ई० में १०-१५ दिन ऋषिकेश-स्वर्गाश्रममें गंगाकी महीन बालू (रज)-को स्नानके समय मस्सोंपर मला, इससे मेरा चर्मरोग एक माहमें पूर्ण रूपसे ठीक हो गया और मस्से भी सूख गये। गंगा शारीरिक-मानसिक लाभके साथ आध्यात्मिक लाभ भी प्रदान करती हैं, गंगास्नानके फलको प्राप्त करनेकी कामनासे करोड़ों नर-नारी कार्तिकी पूर्णिमा, माघी अमावस्या तथा वैशाखादि मासोंमें गंगास्नान-कर सुख और शान्तिका लाभ करते हैं।

—**मनीषकुमार चाण्डक**

(२)

एक गरीब व्यक्तिके उच्च जीवनमूल्य

सन् १९८२ ई० में मेरी पोस्टिंग स्टेट बैंकमें अधिकारी (असि० मैनेजर)-के पदपर जबलपुरकी सिविल लाइन्स शाखामें हुई। उन दिनों जबलपुर गुण्डागर्दी, बदमाशी एवं अपराधोंके लिये कुख्यात शहर था। मैंने डरते हुए वहाँ अगस्त, १९८२ ई० में ज्वाइन किया। अपने एक स्थानीय मित्रके आश्वस्त करनेपर मैं सितम्बर १९८२ ई० में सपरिवार जबलपुर रहने आ गया। वहाँ एल०आई०सी० में कार्यरत श्रीधरमदासजी अग्रवालके मकानमें, जो अग्रवाल कॉलोनीमें था, एक हिस्सा किरायेपर लेकर मैं अपने परिवारके साथ उसमें रहने लगा। उन दिनों मेरे परिवारमें मेरी पत्नी, एक पुत्री (५ वर्ष) तथा एक पुत्र (१ वर्ष)—कुल चार सदस्य थे।

जिस दिन हम शामको जबलपुर पहुँचे, उसी शाम घरके सामनेसे जाते हुए, एक ठिंगने मजदूरनुमा साधारणसे अनजान व्यक्तिने मुझे 'साहब, जय रामजीकी' कहा, अगली सुबह जब हम घरके बाहर लगे नलसे पानी भरने ही लगे थे कि वही व्यक्ति पुनः आया और 'जय रामजी' कहकर बोला—'साहब! आप रहने दें, मैं पानी भर देता हूँ' और मेरे मना करनेपर भी जबरन हाथसे बाल्टी लेकर पानी भरने लगा। देर शामको जब मैं ऑफिससे घर आया तब श्रीमतीजीने बताया कि वह व्यक्ति पुनः आया था और मना करनेपर भी घरकी साफ-सफाईमें काफी मदद कर गया तथा कह गया कि घरका कोई भी काम जो मेरे लायक हो, जैसे गेहूँ पिसवाना इत्यादि तो उसे निःसंकोच कहें। उसने अपना नाम बजरंग बताया; मैंने सोचा शायद कुछ पैसोंके लिये फौरी सेवा कर रहा होगा। बदनाम शहरमें छोटे-छोटे बच्चोंका साथ होनेसे मैंने अनजाने डरसे पत्नीको हिदायत दी कि ऐसे लोगोंसे जरा सँभलकर रहें तथापि मैंने मकान-मालिक श्रीअग्रवालजीको इसके बाबत बताया, तो उन्होंने कहा कि आप बिलकुल न डरें, न घबरायें; यह बजरंग बहुत भला, नेक, ईमानदार एवं निःस्वार्थ-भावसे सेवा करनेवाला अतिविश्वसनीय व्यक्ति है। वह घरके पीछे स्थित सरकारी टेलीकॉम फैक्ट्रीमें मजदूरकी हैसियतसे कार्यरत है तथा पीछेकी चालमें बरसोंसे रहता है। लोगोंकी सेवा करनेका उसमें शगल है। कॉलोनीके किसी भी घरमें जो भी काम कोई कहता है, उसे वह खुशी-खुशी करता है। अग्रवालसाहबने बताया कि बरसोंसे उनके यहाँका अधिकांश घरेलू काम-काज वही करता है और बहुत आग्रह करनेपर भी कोई पैसा नहीं

लेता। वे जब सपरिवार बाहर जाते हैं तो घरकी चाबी बजरंगको दे जाते हैं, वह रातको उनके घरपर ही सोता तथा घरकी देख-रेख करता है, लेकिन कुछ भी लेता नहीं है। उनकी बातें सुनकर मैं बजरंगके प्रति अपने विचारपर लज्जित हुआ तथा उसके बारेमें जाननेको उत्सुक भी। धीरे-धीरे बजरंग हम लोगोंमें घुल-मिल-सा गया, बिना माँगे सेवा करता रहा, गरीब था, उसके छोटे-छोटे बच्चे भी थे, वे भी कभी-कभार आने लगे। मेरे बच्चोंके साथ थोड़ा-बहुत खेलते भी, लेकिन कभी कुछ खाने-पीनेके लिये देते तो मना कर जाते, अनाज वगैरह ठीक करना हो तो उसकी श्रीमतीको भिजवा देता, वह भी खुशी-खुशी मदद कर देती, मगर नि:शुल्क; इस प्रकार बजरंग और उसके परिवारने तो जबलपुरके बारेमें मेरे विचारोंको ही बदल दिया।

एक बार बजरंग L.T.C. पर अपने गाँव जनपद अमेठी (उ०प्र०) गया तथा लौटनेपर मेरे पास आया और बोला, 'साहब! मैं तो बहुत कम पढ़ा-लिखा हूँ। L.T.C. का यात्राबिल बनाकर ऑफिसमें देना है। अत: आप मेरा यह काम अगर थोड़ा समय मिल जाय तो कर देते तो बड़ा उपकार होता।' मैंने उसके इस आग्रहको अपने लिये एक आवश्यक कर्तव्य तथा अवसर समझकर सहमति दी तथा उससे यात्राखर्चके लिये ब्योरा माँगा। उसने बस-ट्रेनके सारे टिकट मुझे सौंप दिये; मैंने ऑटो, रिक्शा तथा अन्य खर्च जो L.T.C. के अन्तर्गत भुगतानहेतु पात्र हैं, के बारेमें पूछा तो वह बोला—'बाबूजी! हम तो गरीब लोग हैं, रिक्शासे नहीं, पैदल ही स्टेशन गये, अपने गाँवमें भी रिक्शा नहीं किया। अत: कुछ खर्च नहीं हुआ, मैंने कहा—उसके लिये बिलकी जरूरत नहीं होती, जो उचित किराया होता है, वह बिलमें लिख सकते हैं, तो वह बोला—'नहीं, साहब! यह तो बेईमानी होगी, थोड़े-से रुपयोंसे जिन्दगीकी तपस्या खत्म हो जायगी, बस जो टिकट मेरे पास हैं, उतना खर्च हुआ, उसका ही बिल बनवा दें।' मैं उसकी ईमानदारीपर अवाक् रह गया।

एक बार मैंने बजरंगसे पूछा कि तुम दिनभर कारखानेमें जी-तोड़ मेहनत करते हो, थक जाते होगे, फिर भी कामसे लौटकर आनेके बाद कॉलोनीमें सबके-घर जा-जाकर काम पूछते हो, करते भी हो, ऐसा करनेका जज्बा तुम्हारेमें कहाँसे आया? उसने कहा—'साहब! भगवान्‌ने धन तो दिया नहीं। अत: धनसे सेवा या दान आदि तो कर नहीं सकते, पर भगवान्‌ने एक बलिष्ठ शरीर दिया है, मनमें संकल्पशक्ति दी है, अगर यह शरीर ही सेवाका माध्यम बना दिया तो सेवा-दान धनके दानसे कम थोड़े ही होगा।' मैंने कहा कि थोड़े पैसे अगर लोग तुम्हें देते हैं तो लेनेमें क्या हर्ज है? बच्चोंकी अच्छी परवरिश हो सकती है, तो वह बोला—'साहब! मूल्य लिया तो सेवा कहाँ रह जायगी, वह काम तो कारखानेमें मजदूरी करने-जैसा हो जायगा। रही बात बच्चोंकी परवरिशकी, तो यदि अच्छे संस्कार—सेवाभाव उनके जीवनमें आ गया तो परवरिश उत्तम ही कही जायगी। वाह रे बजरंग! कितने ऊँचे जीवनमूल्य! वस्तुत: चरित्र एवं आदर्शसे भरा व्यक्ति गरीब नहीं अपितु हमसे कहीं अधिक धनी है।—**बालकृष्ण महाजन**

(३)

अनुकरणीय गोभक्ति

हमारी सोसायटीमें एक माताजी रहती हैं, जिनकी आयु लगभग १०० वर्ष है। गोसेवाको वे अपने दीर्घ जीवनका मूल कारण मानती हैं। गोमाताके प्रति उनका पूज्यभाव हम सबके लिये अनुकरणीय है। उनसे सम्बन्धित कुछ जीवन-प्रसंग इस प्रकार हैं—

१. माताजी आजीवन अकेली रहीं और उनका कोई सांसारिक निकट-सम्बन्धी नहीं है। वे कन्हैयाको ही अपना सर्वस्व मानती हैं या फिर हम-जैसोंको पुत्रवत् स्नेह करती हैं। वे सरकारी सेवासे निवृत्त हैं और अपनी जीवनभरकी बचतके अतिरिक्त अच्छी पेंशन पाती हैं। सादा जीवन और रहनेके लिये अपना अच्छा-खासा

फ्लैट होनेसे उनका खर्च भी कुछ विशेष नहीं है, अत: आय और बचतका अधिकांश भाग वे सेवाकार्यों और खासकर गो-सेवामें लगाती रहती हैं। पिछले वर्ष उन्होंने दिल्लीकी 'श्रीकृष्ण गोशाला' में लगभग सात लाखकी लागतसे एक गो-गृह (Shade) का निर्माण करवाया है। इस आयुमें भी वे सुविधानुसार गोशालामें गोमाताके दर्शन करने जाती रहती हैं। जब वे गोशाला जाती हैं तो गुड़ और हरा चारा तो ले ही जाती हैं, साथ ही इसके अतिरिक्त गोमाताको खिलानेके लिये अपने हाथसे मीठी रोटी भी बनाकर ले जाती हैं। वे अपने मिलनेवालोंको भी गो-सेवाकी प्रेरणा देती रहती हैं।

२. वे प्रतिदिन 'गो-रज' का तिलक लगाती हैं। एक दिन बोलीं, 'बेटा! मेरे जानेके बाद अग्निसंस्कारसे पहले मेरे शरीरपर गो-रजका लेप भी कर देना। तुम अभीसे १-२ किलो गो-रज गोशालासे लाकर मेरे घरपर रख दो ताकि यथासमय उपलब्ध रहे।

३. गोहत्याकी चर्चा या समाचार सुनकर माताजीकी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं। वे कहती हैं, 'मैं अभी और जीना चाहती हूँ और मेरी इच्छा है कि गोहत्या-बन्दीका सुखद समाचार सुनकर ही मरूँ।' जब कभी गोहत्या-बन्दी सम्बन्धी कोई समाचार वे पढ़ या सुन लेती हैं तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। जय गोमाता!

—एन० आर० गुप्ता

(४)

मेरे मुल्ककी असली तस्वीर

जलसेवाके लिये अखिल भारतीय ख्याति-प्राप्त मेरे नगर भवानीमण्डी-(राज०)-में लगभग ३५ वर्ष पूर्व घटी घटना है। हरिद्वारमें भारत-माता-मन्दिरके निर्माता, निवर्तमान शंकराचार्य भानपुरापीठ, श्रीस्वामी सत्यमित्रानन्द गिरिजीने चिन्तनकी इस मनोभूमिपर कि बालकोंमें अच्छे संस्कार जागें, उनका जीवन आदर्श बने, नगरमें एक गुरुकुलकी स्थापना तो कर दी, पर नन्हें मासूम बच्चोंके लिये नगरसे दो किलोमीटर दूर-स्थित गुरुकुलमें आने-जानेकी एक समस्या खड़ी हो गयी।

इसी समस्याके समाधानहेतु श्रीसंघ भवानीमण्डीके नेतृत्वमें गुरुकुल-प्रबन्धकारिणीके सदस्य एक शिष्ट-मण्डलके रूपमें स्थानीय सिटीजन बसके स्वामी जनाब अहमद हुसैन साहबके पास पहुँचे और उनसे अपनी समस्या बतायी तथा गुरुकुलके बालकोंके लिये एक बस मासिक किरायेपर देनेका प्रस्ताव रखा। सहज भावसे सोफेपर आसीन बीड़ीके कश खींचते एवं धुएँके छल्ले हवामें तैराते हुए जनाब हुसैन साहबने शिष्टमण्डलकी बात सहानुभूतिपूर्वक सुनी और फिर बीड़ीका टुकड़ा फेंकते हुए बोले—

'बच्चोंके लिये बस किरायेपर देना मेरे लिये मुमकिन नहीं, हरगिज मुमकिन नहीं।' शिष्टमण्डलके सदस्योंकी पेशानियोंपर परेशानियाँ और निराशाकी सिलवटें उभर पड़ीं। जनाब अहमद साहब खामोशीसे सोफेपर बैठे यह सब कुछ बारीकीसे देखते रहे, अपने शब्दोंकी प्रतिक्रियाको परखते रहे और तभी चर्चाको नया आयाम, नयी दिशा देते, बड़े संजीदाना अंदाजमें कह उठे—

'भाई साहब! आपके बच्चे मेरे बच्चे—एक वालिद अपने नन्हें मासूम मुन्नोंसे उनकी तालीमकी खातिर बसका किराया वसूल करे, यह मेरे लिये मुमकिन नहीं, हरगिज मुमकिन नहीं। बच्चोंके लिये मैं बस, इतना ही कर सकता हूँ कि अपनी बस ही गुरुकुलको भेंट किये देता हूँ।'

ज्यों-ही उन्होंने अपनी कीमती बस गुरुकुलको भेंट की, सदस्यगण प्रसन्न एवं अवाक् हो गये और मौकेपर मौजूद चश्मदीद गवाहानका कहना था कि दरहकीकत, उन लमहोंमें मजहबपरस्तीकी दीवारें धड़ामसे गिरकर जमींदोज हो गयी थीं। दरअसल, यही तो तस्वीर है मेरे अमनपसन्द मुल्ककी—यही तो असली तहजीब और तालीम है मेरे मुल्ककी कौमी एकताकी।

—राजेन्द्रप्रसाद जैन

मनन करने योग्य

दरिद्रताका नाशक—गंगाजल

पूर्वकालकी बात है—लक्ष्मी और दरिद्रादेवीमें संवाद हुआ। वे दोनों एक-दूसरेका विरोध करती हुई संसारमें आयीं और दोनों ही कहने लगीं—मैं बड़ी हूँ, मैं बड़ी हूँ। लक्ष्मीने युक्ति दी—'देहधारियोंका कुल, शील और जीवन मैं ही हूँ। मेरे बिना वे जीते हुए भी मृतकके समान हैं।' दरिद्राने भी तर्क उपस्थित किया—'मैं ही सबसे बड़ी हूँ; क्योंकि मुक्ति सदा मेरे ही अधीन है। जहाँ मैं हूँ, वहाँ काम, क्रोध, मद, लोभ और मात्सर्य—ये दोष कभी नहीं रहते। भय, उन्माद, ईर्ष्या और उद्दण्डताका भी अभाव रहता है।'

दरिद्राकी बात सुनकर लक्ष्मीने प्रतिवाद किया—'मुझसे अलंकृत होनेपर सभी प्राणी सम्मानित होते हैं। निर्धन मनुष्य शिवके ही तुल्य क्यों न हो, सबके द्वारा तिरस्कृत होता रहता है। 'मुझे कुछ दीजिये' यह वाक्य मुँहसे निकालते ही बुद्धि, श्री, लज्जा, शान्ति और कीर्ति—ये शरीरके पाँच देवता तुरंत निकलकर चल देते हैं। गुण और गौरव तभीतक टिके रहते हैं, जबतक मनुष्य दूसरोंके सामने हाथ नहीं फैलाता। अतः दरिद्रे! मैं ही श्रेष्ठ हूँ। तू मेरी बात कान खोलकर सुन ले।'

लक्ष्मीका यह दर्पयुक्त वचन सुनकर दरिद्रा बोली—'लक्ष्मी! मैं बड़ी हूँ—यह बारम्बार कहते तुझे लज्जा नहीं आती? तू श्रेष्ठ पुरुषोंको छोड़कर सदा पापियोंमें ही रमती रहती है। जो तेरा विश्वास करता है, उसके साथ तू वंचना करती है। फिर बड़ी-बड़ी डींगें कैसे हाँक रही है? मदिरा पीनेसे भी पुरुषको वैसा भयंकर नशा नहीं होता, जैसा तेरे समीप रहनेमात्रसे विद्वानोंको भी हो जाता है। लक्ष्मी! तू सदा प्रायः पापियोंके साथ ही क्रीड़ा करती है। मैं योग्य और धर्मशील पुरुषोंमें सदा निवास करती हूँ। भगवान् शिव और श्रीविष्णुके भक्त, कृतज्ञ, महात्मा, सदाचारी, शान्त, गुरुसेवा-परायण, साधु, विद्वान्, शूरवीर तथा पवित्र बुद्धिवाले श्रेष्ठ पुरुषोंमें मेरा निवास है। अतः श्रेष्ठता तो सदा मुझमें ही है। किंतु तू कहाँ रहती है—यह भी सुन ले। पापपरायण राजकर्मचारी, निष्ठुर, खल, चुगलखोर, लोभी, विकृतांग, शठ, अनार्य, कृतघ्न, धर्मघाती, मित्रद्रोही, अनिष्टकारी तथा हृदयहीन मनुष्योंमें ही तेरा निवास है।'

इस तरह विवाद करती हुई वे दोनों श्रीब्रह्माजीके पास आयीं। उन्होंने उनकी बातें सुनीं और इस प्रकार कहा—'पृथ्वी तथा आप (जल)—ये दोनों देवियाँ मुझसे ही प्रकट हुई हैं। स्त्री होनेके कारण वे ही स्त्रीके विवादको समझ सकती हैं और कोई नहीं। उनमें भी जो कमण्डलुसे प्रकट होनेवाली नदियाँ हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उन सरिताओंमें भी गौतमी गंगादेवी तो सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः वे ही तुम्हारे विवादका निर्णय करेंगी।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वे दोनों पृथ्वी और जलके पास गयीं और उन सबको साथ ले गौतमीदेवीके समीप पहुँचीं। भूदेवी और आपोदेवीने गौतमी गंगाजीसे लक्ष्मी और दरिद्राका विवाद स्पष्टरूपसे कह सुनाया। उन दोनोंके विवादको समस्त लोकपाल, पृथ्वी और जल—ये मध्यस्थकी भाँति सुन रहे थे।

उस समय गंगाजीने दरिद्रासे कहा—'ब्रह्मश्री, तपःश्री, यज्ञश्री, कीर्ति, धनश्री, यशःश्री, विद्या, प्रज्ञा, सरस्वती, भोगश्री, मुक्ति, स्मृति, लज्जा, धृति, क्षमा, सिद्धि, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, जल, पृथ्वी, अहंशक्ति, ओषधि, श्रुति, शुद्धि, रात्रि, द्युलोक, ज्योत्स्ना, आशीः, स्वस्ति, व्याप्ति, माया, उषा, शिवा आदि जो कुछ भी संसारमें विद्यमान है, वह सब लक्ष्मीके द्वारा व्याप्त है। ब्राह्मण, धीर, क्षमावान्, साधु, विद्वान्, भोगपरायण तथा मोक्षपरायण पुरुषोंमें जो-जो रमणीय अथवा सुन्दर है, वह सब लक्ष्मीका ही विस्तार है। अधिक सुननेसे क्या लाभ—समस्त जगत् लक्ष्मीमय ही है। जिस किसी व्यक्तिमें जो कुछ भी उत्कृष्ट वस्तु दिखायी देती है, वह सब लक्ष्मीमय है। लक्ष्मीसे शून्य कोई वस्तु नहीं है। दरिद्रे! क्या तू इन सुन्दरी लक्ष्मीदेवीके साथ स्पर्द्धा करती हुई लज्जित नहीं होती। जा, चली जा यहाँसे।'

तबसे गंगाका जल दरिद्राका शत्रु हो गया। तभीतक दरिद्रताका कष्ट उठाना पड़ता है, जबतक गंगाजीका सेवन न किया जाय। [**ब्रह्मपुराण**]

‘कल्याण’के पाठकोंसे नम्र निवेदन

फरवरी माह सन् २०१६ ई० का अङ्क आपके समक्ष है। यह अङ्क उन सभी ग्राहकोंको भी भेजा गया है, जिनको सन् २०१६ ई० का विशेषाङ्क **‘गंगा-अङ्क’** वी०पी०पी० द्वारा भेजा गया है, लेकिन उसका भुगतान हमें प्राप्त नहीं हो पाया है। जिन ग्राहकोंकी वी०पी०पी० किसी कारणसे वापस हो गयी है, उनसे अनुरोध है कि सदस्यता-शुल्क मनीआर्डर/ड्राफ्टसे भेजकर रजिस्ट्रीसे पुनः मँगवानेकी कृपा करेंगे। वी०पी०पी०से पुनः मँगवाने-हेतु अनुरोध-पत्र भेजना चाहिये।

जिन ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भेजनेके उपरान्त भी उनके रुपये यहाँ न पहुँचने अथवा उनके रुपयोंका यहाँ समायोजन आदि न हो सकनेके कारण वी०पी०पी०से अङ्क प्राप्त हो गया है, उनसे अनुरोध है कि वे किसी अन्य व्यक्तिको वह अङ्क देकर ग्राहक बना दें और उनका नाम, पूरा पता तथा अपनी ग्राहक-संख्या आदिके विवरणसहित हमें भेज दें, जिससे उन्हें नियमित ग्राहक बनाकर भविष्यमें ‘कल्याण’ सीधे भेजा जा सके। यदि नया ग्राहक बनाना सम्भव न हो तो पूर्व जमा रकमकी वापसी या समायोजनहेतु पत्र भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—**‘कल्याण-कार्यालय’, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)**

गीताप्रेससे प्रकाशित—करपात्रीजी महाराजकी पुस्तकें

भक्तिसुधा (कोड 1982)—इसके प्रथम भागमें श्रीकृष्णजन्म, बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला आदिका विशद विवेचन है। द्वितीय भागमें देवोपासना तत्त्व, गायत्री-तत्त्व, शक्तिका स्वरूप, शक्तिपीठ-रहस्य, रामजन्म-रहस्य आदिका तात्त्विक विवेचन है। इसके तृतीय भागमें भगवत्प्राप्ति, नामरूपकी उपयोगिता, मानसी आराधना, भगवत्कथामृत आदि विविध विषयोंपर मार्मिक विवेचन है एवं चतुर्थ भागमें वेदान्तरससार एवं सर्वसिद्धान्त-समन्वय है। मूल्य ₹२००

मार्क्सवाद और रामराज्य—सजिल्द, (कोड 698) पुस्तकाकार—इसमें स्वामीजीने पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंकी जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, भारतीय ऋषियोंसे उनकी तुलना, विकासवादका खण्डन, ईश्वरवादका मण्डन, मार्क्सवादका प्रबल शास्त्रीय आलोकमें विरोध तथा न्याय और वेदान्तके सिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन किया है। यह राजनीति और दर्शनके विश्वकोशके रूपमें आदरणीय और मननीय ग्रन्थ है। मूल्य ₹१५०

बहुत दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें अब उपलब्ध

श्रीमन्नारायणीयम्—सजिल्द (कोड 639) पुस्तकाकार—यह नारायणीयम् नामक छोटा-सा स्तोत्रात्मक काव्य केरल प्रान्त-निवासी विद्वान् भक्त श्रीभट्टनारायणतिरिकी रचना है। श्रीकृष्णलीलाके लगभग सभी प्रसंग इसमें वर्णित हैं। भक्तिरसका परिपोषक होनेके कारण यह काव्यरत्न श्रीमद्भागवतके समान आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। भक्त-समाजमें इसका अत्यन्त आदर है। केरलवासी भक्त लौकिक और पारलौकिक कामनाओंकी सिद्धिहेतु इसका नित्य पाठ करते हैं। मूल्य ₹५० (**कोड** 1606) सटीक, ग्रन्थाकार, तमिल एवं (**कोड** 908) मूल तेलुगु (**कोड** 1698) तात्पर्यसहित तेलुगुमें भी।

प्रेमयोग (कोड 64) पुस्तकाकार—प्रेम मानव-भावनाका सर्वोत्कृष्ट परिचय है। जगत्में परमात्माके वास्तविक स्वरूपका परिचय प्रेम ही है। प्रस्तुत पुस्तक श्रीवियोगी हरिजीके द्वारा प्रणीत हिन्दू, मुसलमान, ईसाई प्रायः सभी धर्मावलम्बियोंके प्रेम-सम्बन्धी सूक्तियोंके आधारपर एक सरस एवं स्वस्थ आलोचनात्मक व्याख्या है। मोह और प्रेम, प्रेमका अधिकारी, लौकिकसे पारलौकिक प्रेम, प्रेममें अनन्यता, दास्य, वात्सल्य, सख्य प्रेम आदि विविध विषयोंकी सुन्दर व्याख्याके रूपमें यह पुस्तक नित्य पठनीय एवं संग्रहणीय है। मूल्य ₹३०

प्र० ति० २०-१-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016